दर्शन-शास्त्रकी दुर्दशा।



ब्रह्मानन्द भारती-कृत व्याख्या।



"त्रिशूल" मासिक पत्रसे उद्धृत
और
श्रीकृष्ण हसरत द्वारा हिन्दीमें अनुवादित।



काशी
...में श्रीश्रीशचन्द्र शर्म्मा द्वारा
...त और प्रकाशित।

प्रथमवार १०००] सं० १९८७ [मूल्य ॥) मात्र

मुस्कुराके कहा,—"जैसे व्यञ्जन वर्णके संज्ञा-प्रकरणको न समझने-से पहले धातु-प्रत्ययके समझनेकी चेष्टा करना उचित नहीं, वैसे ही मीमांसादि सहजबोध्य दर्शनकी आलोचना किये बिना, सांख्य-दर्शनके निगूढ़ तत्त्वोंके समझानेकी चेष्टा करना उचित नहीं।"

* श्री *

दर्शनशास्त्र की दुर्दशा ।

श्रीमान् राजा शशिशेखरेश्वर राय बहादुरने अपने श्रद्धास्पद मित्र [illegible] भारती महाशयसे कहा, कि "सांख्यदर्शनके आधुनिक भाष्य और टीका ग्रन्थादिके पढ़नेसे मेरी परितृप्ति हो नहीं रही है। सांख्य-दर्शनकार कपिल ऋषि-विरचित मूल सूत्रादि बहुत खोज करने पर भी मिलते नहीं हैं। आपके लिखे सरल सांख्य-दर्शन ग्रन्थके पढ़नेसे मुझे मालूम हुआ कि आपने सांख्य-दर्शनके निगूढ़ तत्त्वको निकालनेके लिये बहुत अनुसन्धान और परिश्रम किया है। लगातार बहुत दिनोंसे इच्छा है, कि आपके मुखसे सांख्य-दर्शनके सम्बन्धमें और कुछ सुनूं। इस समय यदि आपको फुरसत हो, तो सांख्य-दर्शनके प्रकृतिपुरुष सम्बन्धीय निगूढ़ तत्त्व-को मुझे समझाइये; इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

श्रीमान् राजा बहादुरका ऐसा अनुरोध सुन भारती महाशयने मुस्कुराके कहा,—"जैसे व्यञ्जन वर्णके संज्ञा-प्रकरणको न समझने-से पहले धातु-प्रत्ययके समझनेकी चेष्टा करना उचित नहीं, वैसे ही मीमांसादि सहजबोध्य दर्शनकी आलोचना किये बिना, सांख्य-दर्शनके निगूढ़ तत्त्वोंके समझानेकी चेष्टा करना उचित नहीं।"

राजा बहादुरने कुछ हंसके नम्रभावसे कहा,—"न्याय-मीमांसादि अन्यान्य पाँच दर्शनोंको आयत्त कर सांख्य-दर्शनके प्रकृति-पुरुष सम्बन्धीय निगूढ़ तत्त्वको समझनेकी चेष्टा करना ही उचित है; इसे मैं अस्वीकार कर नहीं सकता। किन्तु मैं वृद्ध हुआ हूं; आप मुझसे भी वृद्ध हैं। कलियुगमें ऋषियों जैसी परमायु पाने की आशा हम लोगोंको नहीं। ऐसी हालतमें खेतमें पहुंच हल जोतके उत्तम बीज रोपण करते हुये वृक्षसे उत्पन्न ताड़के फल को पकाके क्षुधानिवारण करनेका मौका कहां? इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है, कि आपके रसोई घरमें बना-बनाया जो शाक-व्यञ्जनादि तैयार हो, उसमें ही कुछ मेरी क्षुधाकी शान्तिके लिये भिक्षा प्रदान करिये। मेरी यही प्रार्थना है, कि मेरे लिये दुर्ब्बोध्य होने पर भी जहां तक सम्भव हो, सहज और सरल भाषामें मुझे सांख्यदर्शनके प्रकृति-पुरुष सम्बन्धीय निगूढ़ तत्त्वको समझा दीजिये।"

भारती महाशयने नयन मुद्रित किये हुये कुछ चिन्ता कर कहा,—"सांख्य दर्शनके प्रकृति-पुरुषका विषय समझानेसे पहले मुझे यह कहना ही पड़ेगा, कि दर्शन-शास्त्र किसे कहते हैं।

हमलोगोंमें प्रायः सभी लोग दर्शनशास्त्र, षड़दर्शन, आदि की बातें सुनते आते हैं। किन्तु वह क्या है, उसे शायद कोई कोई जानते हैं। आपके सम्पादित "त्रिशूल" पत्रमें किसी प्रबन्ध लेखक ने कई वर्ष पहले दर्शनके बारेमें एक प्रबन्ध लिख कहा था,— "पहलेके मुनि ऋषियोंने विशेष विशेष प्रक्रियाका अवलम्बनकर परमेश्वरका दर्शन पाया था; उसीको वह लोग अपने अपने रचित दर्शनशास्त्रोंमें लिख गये हैं। अतएव पाठकगण! ऋषि लोग जैसा काम करते थे आप लोग भी वैसा ही काम करते रहिये; निश्चय परमेश्वरका दर्शन पायेंगे।" उक्त प्रबन्ध लेखककी जैसी समझ

थी, उसके अनुसार वह समझ बैठे थे, कि परमेश्वरके नामसे सर्व्ववादि सम्मत कोई वस्तु है। जब शास्त्रका नाम दर्शन है, तब उसमें परमेश्वरके दर्शन करनेकी बातोंके सिवा और हो ही क्य सकता है? किन्तु वास्तवमें किसी भी दर्शनमें उस परमेश्वरकी बात तो दूर रही, इस बातका भी निर्णय हो नहीं सका है, कि परमेश्वर हैं या नहीं।

आज हम उन्हीं दर्शनोंके साथ आपका कुछ परिचय कराना चाहते हैं। साधारणतः आंखोंसे देखनेको दर्शन कहते हैं; किन्तु अन्धकारमें टटोल-टटोलके कुछ समझनेको भी दर्शन कहते हैं। इस आंख और चर्म-इन्द्रियके अनुभवकी तरह नाक, जीभ और कर्ण, इन्द्रियके अनुभवको भी दर्शन कहते हैं; जैसे—"पशुः पश्यति घ्राणेन" पशु गन्ध द्वारा देखते,—(अर्थात् समझते) हैं। शिकारी लोग अकसर गन्ध पाके समझ जाते हैं, कि बाघ आया। "चखके देखें, कि यह मीठा है या कड़वा"; यहां जीभके अनुभवको दर्शन कहा गया है। 'राजा पश्यति कर्णाभ्यां",—राजा कानसे देखते, अर्थात् दूतके मुंहसे सुनके राज्यकी अवस्था समझते हैं। शङ्कराचार्य्यने कहा है,—"दृशेः सर्व्वकरणैरूपलब्धित्वात्" अर्थात् समस्त इन्द्रियोंकी उपलब्धिका नाम दर्शन है। लोग कहते भी हैं,—'देखिये' तो सही। यहां आंखसे देखनेको कहा नहीं जाता; समस्त इन्द्रियोंका मूल जो अन्तःकरण है, उसे ही वक्ताके प्रति प्रयोग करनेको कहा जाता है। इस प्रकार चूड़ान्तरूपमें देखने को ही दर्शनशास्त्र समझना चाहिये। शास्त्रकी भाषामें इसे ही कहते हैं,—"प्रमाण द्वारा प्रमेयका स्थिर करना।" लौकिक भाषामें छोटी अदालतने प्रमाणकी पर्य्यालोचना द्वारा जिस सिद्धान्त पर फैसला किया है, बड़ी अदालतने उसकी अपीलको और भी सूक्ष्म भावसे देखा; विशेष अपीलमें तीन जज़ने बैठके उसे ही चूड़ान्त-

रूपमें देखा। इस प्रकार समझना चाहिये, कि प्रमाण द्वारा खास फैसला करनेका नाम दर्शन अथवा दर्शन-शास्त्र है। उदाहरण स्वरूप चार्व्वाक्-दर्शनका जिक्र ही पहले होना चाहिये।

१। चार्व्वाक् दर्शन—प्रत्यक्ष प्रमाणका अवलम्बनकर यह दर्शन पूर्ण हुआ है। मट्टी, पानी, तेज, वायु और आकाश, यह पञ्चभूत प्रसिद्ध हैं; उनमें आकाशका अनुभव न हो सकनेकी वजह चार्व्वाक्‌गण आकाशको भूत नहीं मानते; भूमि, जल, तेज और वायु यह चारही मूल तत्त्व हैं। इन्हीं चारोंसे जगत्‌की सृष्टि हुई है। इन चारोंके कुछ कुछ हिस्सेसे हम लोगोंका शरीर बना है। इन चारोंमें चैतन्य न होने पर भी उनके संयोगसे बने शरीर में चैतन्यता दिखाई देती है। यह रासायनिक क्रियाका फल है। चूना सफेद है, उसमें लाली नहीं; हलदी भी लाल नहीं हैं; फिर भी चूना और हलदीके एकत्र होनेसे लाली आ जाती है। जैसे रासायनिक संयोगसे यह लाली उत्पन्न हुई, वैसे ही चैतन्यता अर्थात् जीवात्मा भी चतुर्भूतकी मिलावटसे बना है, शरीरके साथ होना उसका धर्म्म है, शरीरके नाशसे उसका नाश है; इसके अतिरिक्त पृथक् और कोई जीवात्मा नहीं। सुतरां मरनेके बाद परकाल भी नहीं—कारण; प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा परलोक दिखाई नहीं देता। परलोक होता, तो मरा हुआ मनुष्य अवश्य बान्धवोंके प्रेम से खिंचकर कभी तो दिखाई देता। इस लोकके सुख-दुःखके अपेक्षाकृत आधिक्य द्वारा इस लोकमें ही स्वर्ग और नरककी कल्पना की जाती है। (चार्व्वाककी यह बातें आज कल कितने ही लोगोंके मुंहसे सुनाई देती हैं।) फिर भी सुख और दुःख मिश्रित दिखाई देता है। पुरुषार्थ यही है, कि दुःखका भाग त्याग करो सुख के भागका संग्रह करो। परलोकके भयसे सङ्कोच न करना। इसी से कहा गया है,—"यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?"

बहुत प्राचीन कालसे इस चार्व्वाक् दर्शनके मौजूद रहने पर भी आज कल इसका आदर हो रहा है। आज कलके लोग उधार मिले या और किसी उपायसे मिले; अर्थ संग्रह करनेमें पीछे पैर नहीं हटाते। दुःखके जञ्जालसे सुखको चुन लेनेमें ही बहुत लोग व्यस्त हैं। फिर भी प्राचीन चार्व्वाक्गण सरल और सत्य बातें अपने दर्शनमें प्रकट कर गये हैं। आज कलके चार्व्वाक्गण "ईश्वर" "भगवान्" आदि झूठी बातोंके आवरणमें अपने दर्शनका अनुसरण करते हैं।

किन्तु पाश्चात्य लोगोंकी फिलासफी दर्शन नहीं है, वह फिलासफी ही है। वह ऐसे प्रमाणके ऊपर प्रतिष्ठित नहीं। पाश्चात्य फिलासफर लोग हम लोगोंके आलोच्य प्रमाणके मूलको समझ नहीं सकते। इसलिये उनके मतको प्राचीन पुरुष लोग बर्ब्बरता (म्लेच्छता) बताते थे। किन्तु ऐसा कहनेके लिये हम लोगोंके पास जुबान ही नहीं है। इसीसे कहते हैं, कि वह प्रमाण पर प्रतिष्ठित दर्शन नहीं; केवल फिलासफी ही है। फिलासफीका बाहरी आवरण उठा देनेसे जीवात्मा, परकाल, स्वर्ग, नरक प्रभृति कोई चीज नहीं, "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" का ही सार निकलता है। इस समय लोक-समाजकी गति देखकर क्या यह नहीं कहा जा सकता, कि आज कल चार्व्वाक् दर्शन चल रहा है?

आज कलके लोग जिस मतका अनुसरण करते हैं, उसमें ईश्वर (God) भगवान् प्रभृति अदार्शनिक धर्म्म मत की दोहाई देते हुये केवल दुःखको छोड़ सुख हीके ग्रहण करनेका यत्न दिखाई देता है। पहले यह सब धर्म्म मतावलम्बीगण जिन सब व्रत, नियम, उपवासादि के अनुष्ठानमें दुःख भोगते थे, किन्तु क्या आज कलके धर्म्मध्वजीगण ऐसा करते हैं? आज कलके लोग केवल सुख चाहते हैं, दुःख उठाने के लिये किसी तरह भी राजी नहीं। आज कल जो सब धर्म्मोंके सम्मेलनकी एक हवा चल रही है, उससे वर्त्तमान एक ब्राह्मधर्म्मकी

तरफ देखनेसे ही पृथ्वीमें प्रचलित समस्त धर्म्मके खेल दिखाई दे सकते हैं। इससे ही समझा जा सकता है, कि आज कल चार्व्वाक् दर्शनका समय है या नहीं।

ब्राह्मधर्म्ममें वेद है, वेदी है, आचार्य्य, उपाचार्य्य, ब्रह्म, ब्राह्म, ब्राह्मिका, मुनि, ऋषि प्रभृति ब्राह्मणोंके बड़े बड़े शब्द भी मौजूद हैं। इधर बाइबेल और कुरान भी छूटने नहीं पाया है। इसके अतिरिक्त हिन्दूके मठ, मुसलमानोंकी मसजिद, खृष्टानोंके गिरजे आदि, ब्राह्म-मन्दिरके एक किनारे तीनों ही मौजूद हैं। घर ही घरकी दलबन्दी तक इन लोगोंसे छूटने नहीं पाई है। केवल मैं ही ब्राह्ममतको सब धर्म्मोंका सम्मेलन कह नहीं रहा हूं; वह लोग स्वयं भी स्वीकार करते हैं। किसी ब्राह्मदलको देखनेसे ही प्रचलित सब धर्म्ममतोंका भाव दिखाई दे सकता है। एक हीमें सब धर्म्मोंका सम्मेलन अथवा चार्व्वाक् मतका प्रचलन दिखानेके लिये ही इस व्याख्यानमें ब्राह्मोंका प्रसङ्ग उठाया जाता है।

गत अगहन महीनेकी बङ्गला "तत्त्वबोधिनी" पत्रिकामें "राजाराम-मोहन रायका मत और विश्वास" नामक प्रबन्ध निकला है। उसमें उक्त नामकी पुस्तकके परिचयमें ऐसा लिखा हुआ है,— "हमें जान पड़ता है, कि उक्त पुस्तकके भावकी ओर लक्ष्य रखते हुये ही राजाने उसका नाम "सार्व्वभौमिक" धर्म्म रखा है।" मैं इसीसे कहता हूं, कि एक ब्राह्मदलका भाव देखने हीसे पृथ्वीमें प्रचलित अन्यान्य धर्म्ममतके नमूने दिखाई देते हैं और यही चार्व्वाक् दर्शनके दुःखमें से सुखके चुन लेनेका एक उदाहरण है। अर्थात् आज कलका धर्म्म माननेसे किसी प्रकारका कष्ट उठाना नही पड़ता,—केवल दश आदमी मिलके नाच और गाने द्वारा सुख भोगनेका यत्न करते हैं। केवल इतना ही नहीं, पृथ्वीके अन्यान्य लोग भी हमारे ही जैसा करते हैं, अर्थात् वोट लेनेसे हम लोगोंकी ही जीत है। इसे हम इस

व्याख्यामें दिखाते हैं। जैसे,—"और कोई भी धर्म्मावलम्बी वास्तव में हमारे इस मतका विरोधी हो नहीं सकता।" "जो लोग देश काल और स्वभाव अथवा और किसी शक्तिको इस जगत्‌का शासक समझते हैं, वह लोग भी हमारी धारणा और पूजाको अमान्यकर नहीं सकते।" "हम लोग किसी मत अथवा विश्वासके विरोधी नहीं।" वास्तवमें चार्व्वाक् दर्शनकी भी यही विशिष्टता है। काशी के किसी हिन्दू पण्डितने भी हाल में प्रकाशित किया है,—"चार्व्वाक्‌का सिद्धान्त सबसे सरल और सुबोध है।" हम भी तो कहते हैं, कि समस्त पोथी-पत्रोंकी अपेक्षा नाटक और नावेल के सरल और सुबोध होनेकी वजह आज कल उसकी ही अधिक कटत है, वैसे ही सरल और सुबोध होनेकी वजह वर्त्तमान समय चार्व्वाक् दर्शनका प्रसार हुआ है।

दो तीन हजार वर्ष पहले दूसरे ही दर्शनने इस देशमें प्रभुत्व का विस्तार किया था। वह चार्व्वाक् दर्शनकी तरह एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाणकी बुनियाद पर स्थापित नहीं था। उस दर्शनका सिद्धान्त चार्व्वाक्‌की अपेक्षा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और गंभीर था। वह दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान—इन दो प्रकारके प्रमाणोंके अधार पर है। ऐसे दार्शनिक लोग चार्व्वाक्‌को कहते हैं,—तुम्हारे एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण पर निर्भर करनेसे तत्त्वके निर्णयमें बाधा होती है। तुम लोग जो चेतना या आत्माको मट्टी, पानी, तेज और वायु;—इन चारो तत्त्वोंकी मिलावटसे रासायनिक (Chamical action) रूपमें उत्पन्न बताते हो इससे तुम्हारा प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध नहीं होता; चेतनाको किसी तरह भी प्रत्यक्ष किया जा नहीं सकता। तब तुम चेतना को प्रत्यक्ष करनेसे परकालको भी प्रत्यक्ष कह सकते हो। प्रत्यक्षके साथ अनुमानका प्रमाण मिलानेसे चेतना या आत्माको चारों तत्त्वोंका रासायनिक

प्रयोग कहा जा सकता है। अतएव एकमात्र प्रत्यक्ष द्वारा चूड़ान्त सिद्धान्त हो नहीं सकता; उसके लिये अनुमानके प्रमाणसे युक्त दर्शन इस देशमें बौद्ध या सौगत दर्शनके नामसे विख्यात है। पाश्चात्य फिलासफरगण इस प्रत्यक्ष और अनुमानके प्रमाण का मूल्य ही नहीं समझते; इसीसे दूसरे मनुष्यकी कल्पना या मतको फिलासफी कहा करते हैं। हम लोग उसे दर्शन कह नहीं सकते।

२। बौद्ध या सौगत दर्शन,—चार्व्वाक्‌गणने जो प्रत्यक्ष द्वारा जगत्‌को स्थिर किया है, वह बहुत ही स्थूल सिद्धान्त है। जगत् यदि एक ही रूपमें चिरकाल रहता, तो चार्व्वाक्‌के सिद्धान्त को ही चरम सिद्धान्त कहा जा सकता। जरा डूबके देखनेसे दिखाई देता है, कि जगत् अस्थिर है; पलक झपकते परिवर्त्तित होता है; प्रत्यक्ष द्वारा यह निर्णय किया नहीं जा सकता, कि इस परिवर्त्तनका स्रोत कहां जाके लड़ेगा। इसलिये अनुमानको ही प्रमाण मानना पड़ता है। मनुष्यादि देहधारी मात्र ही इस परिवर्त्तन में तैरते-तैरते अन्तमें विनष्ट हो जाते हैं। अतएव देहधारियों का समष्टि स्वरूप यह जगत् भी परिवर्त्तित होते होते अन्तमें विनाशके किनारे जा लगेगा। उस विनाश (शून्य) का और क्या विनष्ट होगा? इसलिये विनाश (शून्य) ही एकमात्र तत्त्व है। शङ्कराचार्य्यने इस विनाश शब्द को "वैनाशिक-मत" बताया है। साधारणतः यह शून्यवादके नामसे विख्यात है।

इस दर्शन में चार सिद्धान्तों का निर्णय हुआ है। (क) क्षणिकं क्षणिकम्। (ख) स्वलक्षणं स्वलक्षणम्। (ग) दुःखं दुःखम्। (घ) शून्यं शून्यम्। कहते हैं, कि बुद्धदेवके इन चार सिद्धान्तोंसे बौद्ध लोग चार सम्प्रदायमें विभक्त हुये हैं। अतएव उन चार सिद्धान्तानुयायियों के चार सम्प्रदायोंके भाव प्रकट करनेका यत्न किया जाता है।

(क) क्षणिकं क्षणिकम्—जगत्में जो दिखाई देता है, वह क्षण भरके लिये है। दूसरे ही क्षण इसके विपरीत होता है। उदाहरण,—हमारे हाथकी यह लाठी पांच सौ वर्षके बाद बहुत कुछ चूर्णके रूपमें परिणत हो अपना लाठीपन खो बैठेगी। वह परिवर्त्तन अभी से चलने लग गया है। हम लोगोंकी बातों ही बातोंमें जो क्षण बीत गया, उस क्षण लाठीमें अवश्य ही कुछ परिवर्त्तन हुआ है। यद्यपि वह दिखाई नहीं देता, किन्तु अनुमान किया जाता है। इसलिये जगत्की अवस्थाको "क्षणिकं" कहा गया। हृदयमें प्रवेश कर जरा डूबनेसे दिखाई देता है, कि हमारे हृदयमें ही बाहरी पदार्थोंका ज्ञान उत्पन्न होता है। बाहर यदि ऐसा कुछ न होता, तो वैसा ज्ञान भी उत्पन्न न होता। जैसे स्वप्न में हम लोगोंको तरह तरहका अनुभव (ज्ञान) होता है, किन्तु स्वप्न के समयमें बाहर वह अनुभवका पदार्थ भी नहीं रहता। हमारा वह अनुभव (विज्ञान) भी स्थाई नहीं;—क्षण भरके लिये है। इसलिये जैसे बाहरी, वैसे ही भीतरी—दोनों क्षणिक हैं। इसलिये 'क्षणिकं क्षणिकम्' सिद्धान्तावलम्बियोंको क्षणिक विज्ञानवादी कहा जाता है। यह लोग केवल क्षणिक विज्ञानको स्वीकार करते हैं, किन्तु यह मान नहीं सकते, कि बाहर भी कुछ है। इसलिये इनके मतको बाह्यशून्यवाद भी कहते हैं। इस क्षणिक विज्ञानवादी या बाह्यशून्यवादी सम्प्रदायका साधारण नाम "योगाचार" है।

(ख) "स्वलक्षणं स्वलक्षणम्"—क्षणिकत्वके स्थिर होने पर ठीक एकही पदार्थके अनुरूप दूसरे पदार्थके अस्तित्व को स्वीकार करनेका उपाय नहीं। प्रथम पदार्थके समान दूसरे पदार्थको ठहराते-ठहराते प्रथम पदार्थ रूपान्तरित हो जाता है। हे योगाचार! तुम यह बात अवश्य कह सकते हो, कि भीतर जैसा क्षणिक विज्ञान होता है, बाहर वैसा विज्ञान नहीं होता; किन्तु ऐसा क्यों कहते हो,

कि उसमें आंख-कानके ग्रहणयोग्य बाहरी रूपशब्दादिका अस्तित्व नहीं है? बल्कि भीतरी इन्द्रियजनित ज्ञान क्षणिक विज्ञान है और बाहरी विषय उस विज्ञानका ज्ञेय स्वतन्त्र पदार्थ समझा जाता है। अतएव भीतरी विज्ञानका जो स्वलक्षण है, बाहरी विषय या ज्ञेयका वह स्वलक्षण नहीं। किन्तु उसके पृथक् स्वलक्षणको स्वीकार करना पड़ता है। इसलिये बाहर स्वलक्षण और भीतर भी स्वलक्षण है। दोनोंकी समानता नहीं। यह सौत्रान्तिक सम्प्रदायकी बातें हैं। सौत्रान्तिकगण भीतरी और बाहरी दोनों हीका वस्तुत्व स्वीकार करते हैं।

(ग) "दुःखं दुःखम्"—इस सिद्धान्तको माननेवाले वैभाषिक सम्प्रदायके नामसे परिचित हैं। यह लोग भी सौत्रान्तिकगणकी तरह भीतर और बाहर दोनो हीकी विद्यमानता स्वीकार करते हैं। यह लोग सौत्रान्तिककी अपेक्षा यह अधिक कहते हैं, कि भीतरी वस्तुको प्रत्यक्ष और बाहरी वस्तुको अनुमान सिद्ध बताना ठीक नहीं, बाहरी पदार्थ भी प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। इन्द्रिय और विषयके आकर्षणकी वजह इन्द्रियजनित ज्ञान उत्पन्न होता है।। भीतरी और बाहरी इन दोनो ही पदार्थोंके सौत्रान्तिक और वैभाषिकोंके यथार्थ स्वीकार करनेपर शङ्कराचार्य्यने इन दोनो सम्प्रदायों की एक ही राह स्थिर कर दी है। फिर भी, वैभाषिकदलकी विशेष व्याख्या यह है, कि क्षणिक वस्तु ही विनाशशील है और यह विनाशशीलता ही जगत्में दुःखका कारण है। सभी स्थायी होना चाहते हैं, विनष्ट होनेसे उसकी आशा भङ्ग होती है। इसलिये परिजनोंमें एकका नाश होनेसे दूसरोंको दुःख होता है। जब भीतरी भी क्षणिक, बाहरी भी क्षणिक (विनाशशील) है, तब दोनोको ही "दुःखं दुःखम्" कहना चाहिये।

(घ) "शून्यं शून्यम्"—सौगत अर्थात् शून्यवाद-दर्शनके इस सिद्धान्तके माननेवाले माध्यमिक सम्प्रदाय भुक्त हैं। वह लोग कहते

हैं, कि जगत्को क्षणिक दुःख कहनेसे भी चरम सिद्धान्त नहीं होता; चरम सिद्धान्तमें शून्य कहनेकी आवश्यकता है। मरनेके समय बुद्ध-देवने किसी शिष्यके पूछनेपर कहा था,—"मैं किसी तरह भी दुःखके हाथसे छूट न सका, अब मरके शून्य होना चाहता हूं। दुःख शून्यको छू भी नहीं सकता।" इसीसे कहना पड़ता है, कि जगत्के क्षणिकत्वको शून्यकी ही तरङ्गोंके समान मानना चाहिये। महाशून्य समुद्रकी क्षणिक तरङ्गेहीं दृश्यमान जगत् है। इसलिये तुम्हारी भीतरी वस्तुएं भी शून्य और बाहरी वस्तुएं भी शून्य ही हैं। अतएव सिद्ध होता है—"शून्य' शून्यम्" ।

बौद्ध (सौगत) दर्शनको आलोचनासे जो चार प्रकारके सिद्धान्त मिले थे, शङ्कराचार्य्यके एक मतसे उन चारोंको तीन माना गया; यथा—सौत्रान्तिक और वैभाषिक सम्प्रदायके मतसे भीतरी और बाहरी पदार्थोंकी यथार्थता स्वीकृत होनेपर इन दोनोंको दो मत न मान एक ही सम्प्रदाय मानना चाहिये। बाकी दोमें योगाचार मतसे भीतरी वस्तु है, किन्तु बाहरी शून्य है। माध्यमिक लोग कहते हैं, कि जैसे भीतर शून्य वैसे ही बाहर शून्य;—समस्त ही केवल शून्य है। यही बौद्ध-दर्शनका चरम शून्यवाद है।

चार्व्वाक् लोग प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा जगत्को देखते हैं; शून्यवादी बौद्ध लोग प्रत्यक्ष और अनुमानके प्रमाणकी सहायतासे सभी शून्य-मात्र देखते हैं। अब समझना चाहिये, कि भक्तके भगवान्, ब्राह्मके ब्रह्म या ईश्वर, ऐसे ही अन्यान्य उपासकदलके उपास्यके नामसे जो कुछ नाम हैं, वह सब भी प्रमाणमूलक दर्शनमें पाये जाते हैं या हवा हो जाते हैं।

उपासक सम्प्रदायके उपास्य प्रमाणमूलक हैं या नहीं? प्रत्यक्ष मूलक चार्व्वाक् दर्शनमें जगत्के अतिरिक्त निराकार निर्गुण भगवान् प्रभृतिकी सम्भावना ही नहीं; प्रत्यक्ष-अनुमान-युक्त बौद्ध-दर्शनमें

जगत् शून्य है, सब कुछ शून्य है; इसलिये वह सब उपास्य भी शून्य ही ठहरे। तब अपने उपास्योंके बारेमें क्या कहना चाहते हो? पृथिवीमें सब प्रकारकी उपासक-मण्डलीके मुख्यपात्र ब्राह्म भाइयोंने जो कहा है, उसे हम "तत्त्वबोधिनी" पत्रिकाके पूर्व्वोक्त प्रबन्धसे उद्धृत कर दिखाते हैं। २२८ पृष्ठामें लिखा है,—"शास्त्र और युक्ति उनके स्वरूपका परिचय दे नहीं सकती।" (२) "जगत्की यह जो रचना-शृङ्खला और सुनियम है, वह स्पष्ट रूपमें उनके अस्तित्व को सप्रमाण करता है।" 'सप्रमाण' शब्दमें जो प्रमाण शब्दका उल्लेख हुआ, वह प्रत्यक्ष है या आनुमानिक प्रमाण? प्रत्यक्ष तो हो ही नहीं सकता, लाचार अनुमान ही मानना पड़ता है। यह "रचना-शृंखला" और "सुनियम," दोनो ही बौद्धोंके क्षणिकके अन्दर है ही,—पांच हजार वर्ष पहले जो रचनाशृङ्खला और सुनियम प्रचलित था, इस समय वह नहीं। इतनीही शृङ्खला और सुनियमके साथ उस पुस्तकके रचयिताने जिसकी रचना कर रखी थी, इस समय वह रचयिता कहां है? उनका वह देहविन्यास और बुद्धि-कौशल ही कहां है? जब बार बार सृष्टिका प्रलय होगा, तब "रचनाशृङ्खला" और "सुनियम" आदि कुछ भी न रह जायेगा; जीवकी मृत्यु और जगत्का प्रलय क्या "स्पष्टरूपसे" उनकी नास्तिकताको "सप्रमाण" नहीं कर रहा है?

लाख-लाख वर्ष पहलेसे इन सब दर्शनोंके सिद्धान्त उस ईश्वर या भगवान्के नास्तित्वकी घोषणा करते आते हैं और जगत्-रचनाकी शृङ्खला और विशृङ्खला तथा सुनियम और अनियमने दोनो पक्षको क्षणिक बनाया है; उन्होंने भी अपने कार्य्यके दोषका संशोधन नहीं किया, अथवा एकबार अपने अस्तित्वकी भी खबर नहीं दी। नदीके पानीकी लहरें भी तो बहुत देर तक रचनाशृङ्खला और नियमको कायम रख लहरें लेती हैं; इससे क्या वह औरों पर अपने अस्तित्वको

सप्रमाण होने देती है? कोई भी दार्शनिक ऐसा अपसिद्धान्त कर नहीं सकता, कि तुमलोग चाहे जिस उपायसे अपने उनके अस्तित्वको समझा सकते हो। पाश्चात्य फिलासफरगण भी ऐसा कर नहीं सकते। उनमें किसी किसीने कहा है,-इस तरह एककर्त्ताको मानना लोगोंको संयत रखनेका उपाय मात्र है। तुमलोग चाहे कितना ही बना-बनाके क्यों न कहो, दर्शनके आगे वह शून्य हो जाता है। इसीसे यह कहनेकी इच्छा होती है, कि तुमलोग चाहे जिस उपासनाका बहाना करो, वह बिलकुल ही लोगोंको ठगनेके लिये है। अथवा तुमलोग जैसे चतुर हो; उससे ऐसा समझनेका कोई उपाय नहीं, कि तुम इस भावसे उपास्यके अस्तित्वके प्रति दृढ़ विश्वास रखते हुये उपासना करते हो। तुमलोग इस तरह धोखा खानेवाले लड़के नहीं। तुमलोग अच्छी तरह समझते हो, कि तुम्हारे उपास्यगण दर्शनके प्रमाणकी बुनियाद पर स्थापित नहीं।— यहां तक, कि किसी शास्त्रयुक्तिसे युक्त भी नहीं। इसीसे तुम कहते हो,—"शास्त्र और युक्तिसे उनके स्वरूपका परिचय मिल नहीं सकता।" (तत्त्ववोधिनीका वही २२८ पृष्ठा देखिये) केवल ब्राह्म भाई ही नहीं, तान्त्रिक गुरुओंके दलने भी ऐसा ही स्वर अलापा है। जब वह सब उपास्य केवल शून्य (धोखा) ही हैं, तब शास्त्रकी युक्तिसे उस शून्यका परिचय न देना ही ठीक है। इस क्षेत्रमें शास्त्र और युक्तिको अतिक्रम करनेके लिये तुमलोगोंके पास एक ही उपाय यह है, कि—विज्ञानके युक्तियुक्त यथार्थ वचन कवि-कल्पनाके आगे सम्मान नहीं पाते।" तुमलोगोंमें ऐसे कितने ही मनुष्य भी मिलते हैं, जो लोग सरल मनसे उपास्योंके मौजूद रहनेकी धारणा करते हुये उपासनादिके काम करते हैं। इनकी गिनती बहुत कम है। उनकी नासमझी और सरलतायुक्त धारणाके गुणसे मिथ्या उपास्यगण और भी सत्य होने नहीं पाते। मैं भी पहली उम्रमें इसी दलका एक

आदमी बन खूब मतवाला पन करता था। इसीसे दर्शनके विरुद्ध उपासनाके प्रति ऐसी बातें कह सकता हूं। कमसे कम सौ वर्षसे ब्राह्म धर्म्म आविष्कृत हुआ है। इसके परिणामको देखकर ही ऐसे उपास्यकी कल्पनाका मूल्य समझा जा सकता है।

हमारे जनेऊधारी शूद्र वैश्य और तांतियोंका भाव देखनेसे भी यही प्रकट होता है। वह लोग यदि धर्म्मको यथार्थमें कुछ समझते, तो कभी ऐसा न करते। रिजली साहबने मर्दुमशुमारीको रिपोर्टमें शूद्रोंकी अपेक्षा वैश्यों को ऊंचे चढ़ाया है; इसपर शूद्र लोगोंने जनेऊ धारण कर क्षत्रिय बनके उच्च होनेकी इच्छा की, तब वैश्यलोग ब्राह्मण बन और भी उच्च हो रहे हैं। चमार आदि नीच जातिके लोग भी ऐसा ही करने लगे हैं। अपने अपने उपास्योंके प्रति यदि शास्त्र-युक्तिकी विहीनताका भाव न आता, तो क्या यह लोग ऐसा कर सकते? इसीसे कहना पड़ता है, कि बाहरी पर्दा उठाने पर आज-कलके लोग दर्शनहीन चार्व्वाक् दिखाई देते हैं।

अब हम आस्तिक दर्शनके सम्बन्धमें कुछ कहेंगे।

अब तक प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणके साथ चार्व्वाक् और बौद्धदर्शनकी आलोचना की गई। ऐसे दर्शनका साधारण नाम नास्तिक-दर्शन है। इनके अतिरिक्त और भी दर्शन हैं। वह प्रत्यक्ष और अनुमानके अतिरिक्त और भी कुछ प्रमाण-सापेक्ष हैं। उन प्रमाणोंके भावको आजकलके नास्तिक और म्लेच्छबुद्धिवाले मनुष्यके समझनेकी सम्भावना नहीं; उसे केवल आस्तिक ब्राह्मण ही समझ सकते हैं। आजकलके अल्पबुद्धि मनुष्य यही नहीं जानते कि दर्शन किसे कहते हैं; वह लोग तो फिलासफीको ही दर्शन बताते हैं। शायद उन लोगोंको चार्व्वाक् और बौद्धदर्शनका भाव समझा सकनेपर भी इस आस्तिक दर्शनके भावको समझाना असम्भव है। इसका विशेष कारण यह है, कि आस्तिक-दर्शनके तृतीय प्रमाणका

नाम आगम है;—वह प्रत्यक्ष-आगम और अनुमान-आगम; इन दो भागोंमें विभक्त है। आगम क्या वस्तु है, कलिके मनुष्योंके यह न समझ सकनेका कारण भी मैं जानता हूं। यह कारण, पूर्व्वजन्मकृत एक प्रकारका संस्कार-विशेष है। जिसका शास्त्रीय नाम—श्रद्धा है। यह श्रद्धा माताके गर्भसे उत्पन्न होनेसे पहले ही अर्ज्जित रहती है उसी श्रद्धाके साथ मनुष्य भूमिष्ठ होता है। इसी श्रद्धाके प्रभावसे दूसरेके द्वारा न सिखाये जाने पर भी वह परकाल जन्मजन्मान्तर प्रभृतिको मानने पर वाध्य होता है। और सब लोगोंके लिये ऐसा नहीं होता। इसीसे इस देशके हिन्दू लोग अब तक परकाल मानते थे, पृथिवीके अन्यान्य देशवासियोंमें जन्मान्तर-वाद प्रचलित नहीं था। आजकल हिन्दू-सन्तान भी अन्यान्य देशवासियोंकी तरह परकाल पर विश्वास नहीं करते। तब स्वर्ग, नरक, वेद, स्मृति प्रभृतिको कैसे मानेंगे? आजकलकी हिन्दू-सन्तान (ब्राह्मणोंके वंशधर भी) वेदको यदि अहीरोंका विरहा नहीं समझते, तो सायनके भाष्ययुक्त साहित्य ग्रन्थविशेषके अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। वेदवाक्य आगमके प्रमाणको उन्हें कोई भी समझा न सकेगा। मैं समझता हूं, कि उनके पूर्व्वपुरुष लोग जिस श्रद्धाको साथ ले जन्म-ग्रहण करते थे, उस श्रद्धाको यह लोग गवाँके उत्पन्न हुये हैं; इसीसे विना ऐसा किये रह नहीं सकते।

आजकलके मनुष्योंको यह न समझा सकने पर भी, कि आगम क्यों प्रमाण है; किन्तु इतना दिखानेका यत्न किया जा सकता है, कि विना आगम प्रमाणके बलके केवल प्रत्यक्ष और अनुमानके प्रमाण द्वारा बौद्ध-दार्शनिकोंने जो सिद्धान्त किया है, वह चरम सिद्धान्त नहीं हो सका।

आस्तिक ब्राह्मणोंके अतिरिक्त राजर्षि प्रभृति किसीको भी आगम प्रमाणमें प्रवेश करनेका स्वाभाविक अधिकार नहीं। इस

समय क्षत्रिय राजा या राजर्षि प्रभृति कोई हैं ही नहीं। देश म्लेच्छ-मय हो चुका है; इसीसे इतनी बातें कहनेके बाद आस्तिक-दर्शनका प्रसङ्ग उठाया जाता है।

प्रमाणमूलक दर्शनकी श्रेष्ठता यह है, कि इसके सिद्धान्त भूत, भविष्य और वर्त्तमान, तीनों कालमें ही अकाट्य हैं। इस अकाट्यताको आजकलके अल्पबुद्धि मनुष्य समझ नहीं सकते। इसीसे यह लोग तरह तरहके उपास्योंकी कल्पना करते हैं।

आस्तिक दर्शन,—यह प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, तीन प्रकारके प्रमाणों द्वारा निष्पन्न होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमके प्रमाण द्वारा यह स्थिर होता है, कि इसमें चरम सत्य है।

चार्व्वाक्गण जिस चेतनाको रासायनिक संयोग बताते हैं, वह चेतना प्रत्यक्ष-सिद्ध नहीं है, बल्कि अनुमान सिद्ध है; बौद्धोंकी यह आपत्ति उचित है। आस्तिक ब्राह्मण दार्शनिकोंका कहना है,—हे बौद्ध! तुम प्रत्यक्ष और अनुमान, इन दोनोंकी सहायतासे भी चेतनाके स्वरूपका निर्णय कर नहीं सके। चार्व्वाकोंके कहनेके अनुसार चेतना शरीरसे पृथक् नहीं; तुम भी हमसे अधिक और कुछ कह नहीं सकते। तुम्हारी बराबरीके जैन लोग कहते हैं, कि आत्मा देहसे पृथक् है; फिर भी देह परिमित स्वतन्त्र वस्तु है। चेतना, आत्मा और जीव, तीनों ही एकार्थ प्रतिपादक शब्द हैं। तुम लोग जो (१) क्षणिकं क्षणिकम्; (२) स्वलक्षणं स्वलक्षणम्; (३) दुःखं दुःखम्; (४) शून्यं शून्यम्—यह चार सिद्धान्त करते हो, उन्हीं चारोंमें चेतनाको भी होना चाहिये। इसलिये तुम जो "शून्यं शून्यम्" कहते हो, उस शून्यमें भी चेतनाको अनुभूत बताते हो। इसलिये शून्य केवल शून्य हो नहीं है—वह चेतनामय शून्य है। फिर भी तुम उसे स्पष्ट कह नहीं सकते; स्पष्ट कहनेसे तुम्हारा

मूल शून्यवाद नष्ट हो जाता है। प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणके बलसे इससे अधिक और कुछ कहनेकी आशा भी नहीं। हमलोग तृतीय प्रमाणके (आगमके) बलसे इस शून्य और चेतनाके (आत्माके) सम्बन्धमें चूड़ान्त—और ही एक सिद्धान्त कर सकते हैं। विना आगमके सहारे केवल प्रत्यक्ष अनुमान द्वारा इस सिद्धान्त तक कोई पहुंच नहीं सकता। वह यों है:—

आगमका कहना है,—"विरजः पर आकाशात् अजआत्मा महान् ध्रुवः।" आकाशके परे आत्माका अवस्थान है। तुम जिसे शून्य कहते हो, वह आकाश है; वही जगत्का उपादान है। उसी शून्य (आकाश) के परे चेतनाका आधार आत्मा है। अर्थात् जगत् और आत्माके बीचमें आकाश है, उसी आकाशके उपादानसे जगत्की रचना हुई है। जगत्के भीतर जो चेतना दिखाई देती है, उसे उस आत्माका प्रतिविम्ब या आभास कह सकते हो। इसे चार्व्वाक् लोग जगत्के रासायनिक संयोगसे उत्पन्न वता सकते हैं। देहव्यापक क्रियाको देखके जैन लोग भी देहपरिमित, फिर भी देहसे पृथक् आत्मा—(चेतना) कहें, तो कह सकते हैं। किन्तु उस चेतनाके आकर मूल आत्माको आकाशके (शून्यके) अतीत मानना, केवल प्रत्यक्ष अनुमानके आयत्त नहीं; यह विना आगम प्रमाणके सिद्ध ही नहीं होता।

वौद्धोंके प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा सभी कुछ शून्य मानना पड़ता है; ब्राह्मणोंके इस प्रत्यक्ष और अनुमान तथा अतिरिक्त आगम, इन तीन प्रमाणों द्वारा आस्तिक दर्शन निष्पन्न होता है; इसमें शून्यके (आकाशके) भीतर सचमें कुछ अस्तित्व दिखाई देता है। जगत्में केवल शून्य ही नहीं है—सत्य भी है। बाकी बौद्धोंकी शून्यवाद आलोचना द्वारा कुछ भी नहीं, सभी कुछ शून्य माना गया था। इससे वहुत निराश होना पड़ता है। अब आस्तिक दर्शनका चरम

सत्य सुनकर कुछ भरोसा हुआ। केवल इतना ही मालूम होता है, कि सत्य है। इसका फैसला नहीं होता, कि वह सत्य कौनसी वस्तु है।

अब यह फैसला कौन करे? चार्व्वाक् और बौद्धके मतसे तुम जड़ शरीर मात्र हो, तुम्हारी चेतना तो रासायनिक कार्य्य ही ठहरा। जैन (दिगम्बर) के मतसे वह चेतना (आत्मा) जड़ शरीरसे भिन्न पदार्थ होनेपर भी देहसे लगी ही रहती है। आस्तिक-दर्शनके मतसे वह चरम सत्य वस्तुका प्रतिविम्ब या आभास मात्र है। वह आकाशमें जाके खतम हो जाता है, उस समय विम्बस्वरूप मूल सत्य मात्र रह जाता है। उसको समझानेवाला यहां कौन बैठा है? जड़ जगत् समझनेकी शक्ति नहीं; चेतना भी स्वयं कोई चीज नहीं,—सत्यकी छाया मात्र है। अब सत्यको कोई कैसे जाने? आगम प्रमाण केवल सत्यके अस्तित्वको बता देता है। इसीसे दार्शनिक ब्राह्मण आस्तिक हैं।

यदि कहो, कि ऐसे सत्यके रहने या न रहनेसे हमारा क्या नफा नुकसान? इसका जवाब यह है, कि दुःखमय संसारसे मुक्त होनेकी सम्भावना रहती है।

एकबार व्याख्याके रूपमें मैं अपनी स्वानुभूति, अर्थात् मैंने स्वयं विचारकर जो पाया है, उसे कहता हूँ।

स्वानुभूति।

चार्व्वाक् चाहें कुछ ही क्यों न कहें; किन्तु मैं देह नहीं, जड़ पदार्थ भी नहीं, कुछ चैतन्य हूं। जैनियोंके कहनेके अनुसार देहातिरिक्त हूं सही, किन्तु देहपरिमित नहीं। फिर भी मैं समझ नहीं सकता, कि मेरा परिमाण कितना है,—उसकी कुछ सीमा है या नहीं।

जागती हालतमें मैं बाहरी वस्तुओंका अनुभव करता हूँ। स्वप्नमें बाहरी जगत्‌के बदले दूसरे ही जगत्‌का व्यवहार चलता है। यह स्वप्न केवल निद्रामें ही दिखाई नहीं देता,—जागनेके समय मन ही मनमें जो दिखाई देता है, वह भी इसी स्वप्नके अन्तर्गत है। योगाचारियोंके मतसे बाहरी जाग्रत जगत् मिथ्या है, किन्तु भीतरका स्वप्न जगत् सत्य है; सौत्रान्तिक और वैभाषिक मतसे जाग्रत और स्वप्न दोनों ही सत्य है। माध्यमिक गणका कहना है, कि यह दोनों ही मिथ्या है। मेरी समझमें माध्यमिकगण सुषुप्ति (अर्थात् स्वप्न-विहीन गहरी नींद) का लक्ष्य कर जाग्रत और स्वप्नको मिथ्या बताते हैं। हम जब निद्रागत होते हैं, उस समय तो जाग्रत स्वप्न रह नहीं जाता।—निद्रामें किसीका भी अनुभव नहीं होता। निद्राको तमः या शून्य कहा जाता है; शास्त्रमें भी ऐसा ही कहा है। अतएव माध्यमिकगण "शून्यं शून्यम्" कह सकते हैं। ऐसा कहना उचित नहीं, कि सुषुप्ति आकाशमें अपना (चेतनाका) अनुभव न रहने पर भी हमारे लिये बहुत ही अभाव होता है। ऐसा होता, तो निद्राके भङ्ग होने पर फिर स्वप्नमें अन्तर्जगत् और जागतेमें बहिर्जगत्‌का अनुभव न होता। तब निद्रामें चेतना क्यों नहीं रहती? इसके उत्तरमें यह जान पड़ता है, कि—वहां द्वितीय वस्तुके न रहनेसे चेतना प्रतिभात हो नहीं सकती। जैसे घरके भीतर दीवारके छेदकी राहसे रोशनी आने पर शून्यमें उस रोशनीका अस्तित्व प्रकाश नहीं पाता; जहां वह रोशनी जमीनसे छू जाती है, वहां रुपयेकी तरह गोल आकार धारण करती है। शून्यवादी लोग जहां कुछ भी नहीं बताते वहां हम घरके भीतरकी शून्यस्थित रोशनीका भाव मान लेते हैं। मेरी समझमें—शून्यवादी लोग उस रोशनीके अस्तित्वकी ओर लक्ष्य न कर केवल शून्यको ही देखते हैं। और आस्तिक दार्शनिक उस शून्यको भेदकर रोशनीके अस्तित्वको देखते हैं; इसीसे आगमका कहना है,—"तमसः परस्तात्", "व्योम्नि आत्मा-प्रतिष्ठितः।" बुद्ध-

देवने जो कहा था,--"मैं मरके शून्य हुआ जाता हूँ। वहां दुःख मेरा स्पर्श कर न सकेगा।" यदि वह आस्तिक होते, तो कहते,--मैं शून्यको अतिक्रम कर सत्यमें (चेतनाके आकरमें) प्रवेश करता हूँ। वहां दुःख जा नहीं सकता;--क्योंकि वह सामने शून्यको पायेगा और वहां प्रवेश करते ही विनष्ट हो जायेगा। मैं आस्तिक ब्राह्मण हूं, मैं देखता हूं, कि यद्यपि मैं इस समय चेतना अर्थात् जीवात्मामात्र हूं, तथापि मेरी यह अवस्था जड़देहके साथ संस्पर्श द्वारा हुई है। यह सब जड़ जगत् शायद आकाशके उपादानसे रचित है, यह खूब अच्छी तरह समझे, किन्तु हम जड़की गिनतीमें नहीं--हम आकाशमें ही हैं। इस आकाशमें रहना शून्यमें रहना नहीं; सत्यमें प्रतिष्ठित होना मात्र है। हमारा यह आस्तिक ब्राह्मणत्व हमें शून्य होने नहीं देता, सत्यमें प्रतिष्ठित रखता है।

पहले जो ईश्वर भगवान् प्रभृतिके उपासकोंकी बातें कही गई हैं, वह लोग आगम प्रमाणकी बातें तो दूर रहीं, प्रत्यक्ष और प्रमाणके बल पर जो दर्शन है, उसे भी समझ नहीं सकते,--केवल कल्पनाके बलसे कुछ मानके उपास्यकी उपासनामें प्रवृत्त होते हैं; वह नास्तिक दार्शनिकोंसे भी अधम हैं। वह लोग मेरे इन सब विचारों पर दांत भी उभाड़ नहीं सकते। उनके कल्पित उपास्य दर्शनके अयोग्य हैं। यह विचारवानोंकी कल्पना है; इससे कागजपत्र और साहित्यकी शोभा बढ़ती है। उनके साथ अधिक तर्क-वितर्क करना भी कठिन है। प्रमाण-मूलक दर्शन वैसा नहीं। यह जो हमलोगोंका प्रतियोगी शून्यवाद है, वह भी दर्शन है। बाहरी आंखसे न सही, हृदयकी आंखसे उस शून्यका साक्षात् किया जाता है। आस्तिक दार्शनिक कहते हैं, कि सांख्य अनुमान और योग प्रत्यक्ष है। अर्थात् अनुमानके बलसे प्रकृत तथ्यका निर्णय होता है; इसके बाद योग द्वारा वह प्रत्यक्ष होता है। आजकलके उपासकोंके उपास्य वैसे नहीं।

योगजनित स्वानुभूति ।

जब मैं स्वानुभूतिकी बातें कहनेमें प्रवृत्त हुआ हूँ, तब योग द्वारा जो कुछ मुझे दिखाई दिया हो, वह भी कहना उचित है। इसके कहनेमें मुझे कोई वाधा नहीं, किन्तु सुनेगा कौन ? लोग कहते हैं,--"सभाको समझके गाना चाहिये"। "असम्भवं न वक्तव्यम्"। मैंने पहली उम्रके समय अपने गांवमें (विक्रमपुरमें) पचास वर्ष पहले जो समाज देखा है; जो वृद्ध पुरुष उस समय मौजूद थे, उनके आगे यह असम्भव नहीं माना जाता था। अब वह लोग नहीं रहे। गत पचास वर्षोंमें एक नया समाज उत्पन्न हुआ है। इस समाजका परिचय देनेके लिये कई एक सकारोंका उच्चारण करनेसे ही समाज बन जाता है। जैसे--सभा, समिति, सभ्य, सभ्या, सभापति, सम्भाषण, शहर, साहित्य, संवादपत्र, सत्यगोपन, सुरुचि, स्वाधीन होना, स्वराज, सम्मेलन, सर्व्वधर्म्म-समन्वय, स्वामी, संन्यासी, सहानुभूति, साहाय्य-भाण्डार, स्कूल, स्कालर और सर्व्वनाश-साधन।

हमारे वह वयोवृद्ध लोग चले गये हैं, इस समय मैं उनके आसन पर बैठा हुआ हूँ। मैं सोचता हूं, कि जितनी शीघ्रताके साथ पहलेके समाजके भङ्ग होने पर नया समाज गठित हुआ है, उससे बहुत ही शीघ्र दूसरा समाज भी दिखाई देगा और इस तरह होते होते ऐसा समाज भी बन सकता है, जिससे आजकलके समाजकी असम्भव और प्रत्यक्ष बातें सम्भव हो सकती हैं तब मैं योगसे देखे समाचारको दूसरोंके लिये क्यों न रख जाऊँ ?

वास्तविक समाचार यही है, जिससे दर्शनके सिद्धान्त प्रत्यक्ष किये जा सकें। इस प्रत्यक्ष व्यापारको दूसरों पर प्रकट करनेके लिये भाषा द्वारा प्रकाश किया जाता है। जिन सिद्धान्तोंको प्रत्यक्ष करानेके लिये कहा गया है, यही एक प्रकारसे भाषा द्वारा प्रकाश

करना है। उसकी अपेक्षा और भी कुछ व्याख्या की जा सकती है; इसके लिये वैसे ही अनुभूतिकी सम्भवना दिखाई जाती है।

तुम लोग जिस जाग्रत जगत्का अनुभव करते हो, और जिसे अनन्त असीम समझते हो, मुझे उसकी सीमा दिखाई देती है। इस सीमाके देखनेका भाव समझानेके लिये दृष्टान्तकी अवतारणा की जाती है। थियेटर घरको गैलरीमें बैठकर जब तुम थियेटर देखते हो, तब यदि पूछा जाये, कि इसका अन्त या सीमा कहां है? तो तुम कहोगे, कि जब नाटक खतम हो जायेगा, हम लोग घर लौटेंगे, तभी इसकी समाप्ति है। इस पर मै कहूंगा, कि जैसे तुम लोग अपनी मृत्युसे जाग्रत जगत्की सीमा देखते हो, उसे मैं दूसरी तरहसे देखता हूं। ड्रापसीन गिर जाने पर भी कुछ देरके लिये अभिनयका दर्शन वन्द हो जाता है; क्या वह अभिनयकी सीमा नहीं है? मेरे हिसाब वह ड्रापसीन ही अभिनयकी सीमा है। क्या तुम इसे स्वीकार कर सकते हो? मेरा कहना है कि जब तुम सो जाते हो, उस समय जगत्-दर्शनका ड्रापसीन होता है। इसके बाद तुम स्वप्न जगत्का अभिनय देखा करते हो। उसी स्वप्न और जगत्-दर्शनकी तरह तुम्हारा यह जगत् है। तुम उसका आरम्भ और समाप्ति भी देखते हो, सीमा भी देखते हो। उस स्वप्नाभिनयकी सीमा या ड्रापसीन क्या है? तुम फिर नींदसे जागते ही उसे समझ जाते हो। मैं उसकी अपेक्षा और भी गभीर अभिनय देखता हूं, तुम भी देखते हो; किन्तु तुम उसका खयाल नहीं करते। स्वप्न देखते देखते तुम बेहोश हो के अपने को भूल जाते हो, उस समय कुछ भी रह नहीं जाता। यही स्वप्न जगत्की ऊर्द्ध सीमा है। जाग्रत निम्न सीमा है, उस स्वप्नविहीन घोर निद्राका नाम--सुषुप्ति है। कोई युरोपीय फिलासफर इस सुषुप्तिके अस्तित्वको स्वीकार ही नहीं करते। कहते हैं,--ऐसी निद्रा कभी होती नहीं, जिससे मन स्थिर होके विश्राम करे। हिन्दुस्थानके कालेजोंमें पढ़ाये जानेपर भी कालेजके बाहर यह बेचा नहीं जाता।

अतएव सुषुप्ति नामक दूसरे अभिनयक्षेत्रको तुम एक वारगी ही उड़ा न दो। मैं कहता हूं, कि स्वप्न-जगत्की बाहरीसीमा जैसे जाग्रत् जगत् है, वैसे हीं भीतरकी सीमा सुषुप्ति है। स्वप्नके वन्द होनेपर जव सुषुप्ति आरम्भ होती है, तभी स्वप्नजगत्के अभिनयका ड्रापसीन कहा जाता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, यह जो तीन प्रकारकी हालतोंमें हमलोग विचरण किया करते हैं, उन तीनों अभिनयोंमें आने-जाने योग्य किसी न किसी राहको तुम्हें स्वीकार करना ही पड़ेगा। जैसे तीन फूलसे माला गूंथनेके लिये फूलके वीचसे डोरा डालनेकी राह निकाली जाती है, वैसे ही जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिमें विचरण करनेके लिये कोई विशेष राह ढूँड लो। सुषुम्ना नाड़ीको वातोंसे ऐसा ही भाव होता है।

शायद तुम सुषुम्ना नाड़ीका नाम जानते हो, वेदान्तकी आलोचना करनेवाले ऐसी हितैषिणी नाड़ीका नाम जानते हैं, किन्तु तुम लोगोंमें किसीको भी उसकी खवर नहीं। जैसे भक्तके भगवान् केवल नाममात्र को हैं, कामके समय कुछ नहीं, वैसे ही इन सब नाड़ियोंको तुम समझ नहीं सकते। जैसे एक जटिल हिसावके लिये तीन स्लेट भर लिखने पर गुणनफल प्राप्त होता है, वैसे ही विशेष प्रक्रियाके अव-लम्वनसे उन सव नाड़ियोंमें प्रवेश किया जाता है। आजकलके कल्पित भगवान् प्रभृति इससे मिल नहीं सकते। ईश्वर भगवान् प्रभृति नवीन सव उपास्य निराकार और जगत्के वाहर हैं। यह सव नाड़ियां साकार और जगत्के भीतरकी वस्तु हैं। सुतरां प्रयत्नसाध्य हैं। जो सव मनुष्य इस नाड़ी-विज्ञानका अनुशीलन करते हैं, उनमें ही मैं भी एक हूँ। भगवद्गीताके अष्टम् अध्यायमें नाड़ीयोगका उल्लेख मौजूद है। मैं किसी विशेष योगावलम्वनसे नाड़ीमें प्रवेश कर सकता हूँ। "असम्भवं न वक्तव्यम्" समझके ही चुप रह जाता हूँ।

अव विचारके देखो, कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन तरहकी हालते हैं, तुम प्रायः नित्य इन हालतोंमें आते जाते हो। तुम

जिस राहसे आते-जाते हो, उसके बारेमें कुछ भी खयाल नहीं करते; मैं उसका अनुसन्धान कर कुछ कहूंगा, तो तुम उसे असम्भव समझके उड़ा दोगे; यह तुम्हारी कैसी हालत है ?

उक्त व्यापार साधारण बुद्धिके अगोचर है। इसमें उपनिषद्-उक्त विद्याका ही गम्य है। इसीसे यह लोकसमाजमें प्रकट नहीं होता। नाड़ी शब्द कहनेसे लोग पेटके भीतरकी अँतड़ियां समझते हैं। आयुर्व्वेदके मतसे कविराज लोग हाथकी नाड़ीको दबाके जिस वायु, पित्त और कफकी नाड़ीको समझते और रोगका निदान कर देते हैं, वह वायु, पित्त सौर कफकी नाड़ियां अन्नगत हैं, स्थूल-इन्द्रिय-ग्राह्य नाड़ियां नहीं। मैंने उससे भी सूक्ष्म नाड़ीका प्रसङ्ग उठाया है। हृदयके विचारोंको गूढ़भावोंको भी इसी प्रकार मानना पड़ता है। हृदय शब्दके कहनेसे छातीके भीतरके मांसपिण्ड-विशेषको ही लोग समझ वैठते हैं। मैं जिस स्वानुभूतिका विषय कह रहा हूं, उसमें मैं हृदयका भी अनुभव करता हूं। वह कोई गूढ़ विषय है फिर भी स्थूल हृद्यन्त्रके साथ उस का सम्बन्ध हो सकता है। सामवेदकी गायत्री-विद्यामें उस हृदयमें प्रवेश करनेके उपयुक्त पांच राहें निर्दिष्ट दिखाई देती हैं। मेरी कही हुई नाड़ीकी भी वही राह है। इन नाड़ियोंने हृदयमें प्रवेश किया है। जैसे नदी सागरमें प्रवेशकर सागरके साथ मिल जाती है, वैसे ही यह सब नाड़ियां भी हृद्गह्वरके परमाकाशमें मिल जाती हैं। सामवेदकी "दहरपुण्डरीक" विद्यामें और शुक्ल यजुर्व्वेदकी "हार्द्द" विद्यामें मुझे इसका परिचय मिला है।

किसी योगावलम्बनसे मेरी अन्तर्दृष्टि खुल गई। उस समय मैं एक तरहकी ज्योतिका अनुभव करने लगा। वह ज्योति चर्मचक्षुसे दिखाई देनेवाली नहीं। भीतरी ज्योतिके विकाशको स्वप्नजगत्के अन्तर्गत ही मानना पड़ेगा। मैंने उस ज्योतिको ही नाड़ीका भीतरी हिस्सा मान लिया है। उस समय मुझे उस ज्योतिकी सहायतासे

स्वप्नगत किसी चिन्हके भी देखनेका अवकाश नहीं मिलता। जान पड़ता है, कि मानो मैं रेलगाड़ी पर सवार हो तेजीके साथ स्वप्नजगत्को अतिक्रम करने लगता हूँ। इसके बाद मैं उस ज्योतिके भी भीतरी भागको प्राप्त होता हूं। वह घोर अन्धकारमय है। उस समय ज्योति समाप्त होती और अन्धकारका आरम्भ होता है; उसे मैं हृदयमें प्रवेश करना समझता हूँ। उस ज्योतिके अन्तिम भागको मैंने हृदयका मुख मान लिया है। उस अन्धकार या तम द्वारा स्वप्न देखनेकी सम्भावना नहीं रहती। मैं समझता हूँ, कि योगावलम्बन न करनेसे सुषुप्ति द्वारा जीवगण इस तमोमें प्रवेश करते ही सो जाते हैं। वह विवश होकर सो जाते हैं। स्वप्न देखते देखते स्वप्नजगत्को छोड़ अनजानमें घोर निद्राविष्ट होनेपर सुषुप्तिके भावको साधारण मनुष्य समझते नहीं। इसीसे वह फिलासफर साहब सुषुप्तिके अस्तित्वको ही अस्वीकार करते होंगे।

निद्रासे जागने पर मैंने उस तम या सुषुप्तिके तत्त्वकी आलोचना कर देखा है। दोपहरके दिनकी रोशनीसे एकाएक कोठरीमें जाने पर उस कोठरीमें जैसा अन्धकार जान पड़ता है, हृदयके भीतर जाने पर वैसे ही अन्धकार या तमका अनुभव होता है। इसलिये "हृद्-गह्वर" शब्द शास्त्रमें प्रयुक्त होता है। मैं उस हृद्गह्वरमें डूबनेके बाद नीलाकाश देखता हूँ। मैंने विचार कर मालूम किया है, कि आकाशकी वह नीलिमा अनन्तत्व-द्योतक है। श्रुतिमें कहा है,— "य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः।" इसीसे मैं समझा हूं, कि इसी प्रकार चरममें आकाश (जिसे बौद्धलोग शून्यमात्र कहते हैं,) मिलता है। उसे मैं एकान्त चरम कह नहीं सकता; कारण यह, कि वह आकाश या शून्य यदि बिलकुल ही शून्य होता, तो मैं कभी शून्य न होता; तब मैं भी शून्य हो जाता; जब मैं फिर लौट आता हूँ, तो मानना पड़ता है, कि मैं आभास या जीवात्मा हूं, और आकाशके अतीत

सत्यमें प्रतिष्ठित हूं। उस प्रतिष्ठा या आकरको छोड़ मैं फिर जाग्रत-स्वप्नजगत्में लौट आता हूं।

इतनी देरकी आलोचना द्वारा यह निश्चय हुआ, कि जिसमें कुछ नहीं, जो समस्त ही शून्य है, वही नास्तिकोंका दर्शन है। और जिसमें कुछ भी एकमात्र सत्य है, वही आस्तिक दर्शन है। अब आस्तिक षड्दर्शनका प्रसङ्ग उठाया जाता है। आस्तिक या नास्तिक किसी भी दर्शनमें ईश्वर या भगवान्के नामसे जगत्पिता जगदीश्वरका अस्तित्व नहीं मिलता, यह केवल कल्पना मात्र है।

षड्दर्शन।

एकमात्र सत्य कुछ है; इसी मूल आस्तिक दर्शनसे षड्दर्शनकी उत्पत्ति है। बौद्धोंके शून्यवादके चार सिद्धान्तोंसे माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक नामक चार सम्प्रदायोंकी उत्पत्तिका जिक्र पहले किया गया है और उन चारोंमें केवल तीन वाद यहां आये हैं। वैसे ही वर्णित आस्तिक दर्शनसे भी तीन वाद उत्पन्न हुए हैं, जैसे,—अद्वैतवाद, परिणामवाद और आरम्भवाद। इन तीन वादों द्वारा षड्दर्शनकी रचना हुई। यह क्रमशः कहा जाता है।

१। अद्वैतवाद,—एकमात्र सत्य कुछ है, दूसरे कुछ नहीं; प्राचीन दार्शनिक ब्राह्मणोंने विचार कर देखा है, कि इस अद्वैतदर्शनसे हमारे परिदृश्यमान जगत्का व्यापार कैसे सम्भव हो सकता है। उन लोगोंका कहना है, कि जगत् कुछ नहींके ही अन्तर्गत है। जैसे रस्सीका सर्प और मरुभूमिमें मरीचिकाके दिखाई देने पर भी वह कुछ नहीं है, वैसे ही उस अद्वैत सत्यमें इस जगत् व्यापारके अनुभूत होने पर भी वह कुछ नहीं है। सुतरां "एकमेवाद्वितीयम्" कहना ही ठीक है। मिथ्या जगत् द्वारा अद्वैतकी हानि हो नहीं सकती।

द्वैतभावको आकाश या शून्य कहा जाता है। वही जगत्का उपादान है। वह आकाश किस तरह जगत्का आकार धारण करता है?— मायावी जादूगर लोग जो सब जादूके खेल दिखाते हैं, वह मिथ्या और मायाका ही काम है। माया कोई चीज नहीं, शून्यमात्र है, इस शून्यको उस सत्यवस्तुकी शक्ति भी कह सकते हैं। इसलिये कही गई चरम-सत्य वस्तुकी मायाशक्ति द्वारा जगत् रचित होता है; ऐसा-कहनेसे सत्यका अद्वितीयत्व कायम रह जाता है। यदि कहो, कि सत्य भी उसकी शक्ति है, बिना दोनोंके चल ही नहीं सकता, तो इसके उत्तरमें यह कहना है, कि चुम्बक और उसकी आकर्षणी शक्ति कहनेसे दोनों ही पदार्थ नहीं माने जाते। उस आकर्षणी शक्ति द्वारा चुम्बकके अद्वितीयत्वकी हानि नहीं होती; जैसे मायाशक्तिको स्वीकार करनेपर भी सत्यको अद्वैत कहा जाता है। वह शक्ति प्रधानतः इच्छा, ज्ञान और क्रिया—इन तीन भागोंमें विभक्त है। मायाशक्ति नामक आकाश, पहले इच्छाशक्तिके बलसे कुछ विकृत होता है। इसके बाद ज्ञानशक्तिके विकाशसे किस प्रकार जगत् सुश्रृङ्खलाके साथ प्रकट हो सकता है, इसपर विचार चलता है। इसके बाद क्रियाशक्तिके विकाशसे सृष्टिका काम चलता है। माया या शून्यके उपादानसे इस प्रकार मिथ्या जगत्के उत्पन्न होने पर भी उसके द्वारा सत्यका स्पर्श किया जा नहीं सकता। अद्वैत सत्य अविकृत ही रहता है।

वेदके उपनिषत् भावसे इन सब भावोंका उद्धार किया जाता है। रस्सीमें सर्पभ्रमकी जगह उस सर्पभावको "रज्जुमें सर्प-विवर्त्त" कहते हैं, अर्थात् यह हुआ रस्सीका स्वाभाविक लपेट, बटन (स्थिति) सर्पाकार उसका विशेष (अस्वाविक) लपेट है, इसी अर्थसे विवर्त्त हुआ। वैसे ही सत्य पदार्थमें जगत्का विवर्त्त दिखाया गया। इसलिये अद्वैतवादका नाम—विवर्त्तवाद हुआ। वेदके उपनिषद् भागका नाम वेदका अन्त या किनारा अर्थात् वेदान्त है। उस उपनिषत् या वेदान्तकी वाक्यावली इतनी जटिल और सरसरी

दृष्टिसे इतना विरुद्ध भावापन्न है, कि उससे कुछ निर्णय करना सहज बुद्धिका काम नहीं। इसीलिये कृष्णद्वैपायन वेदव्यासाचार्य्यने कितनेही सूत्रोंकी रचना कर वेदान्तके वाक्योंकी मीमांसा की थी। उन सूत्रोंका नाम वेदान्तसूत्र या उत्तरमीमांसा अथवा ब्रह्ममीमांसा या वेदान्त-दर्शन है। शङ्कराचार्य्यने शारीरकभाष्य नाम रखके उन सब सूत्रोंकी भाष्यरचना की है।

कलियुगमें यथार्थको विकृत बनानेका स्वाभाविक आचरण है। नवशिक्षित ब्राह्म भाइयोंने खृष्टान मतका अनुकरण कर नवीन मत तैयार करनेमें प्रवृत्त हो उपनिषत्के "ब्रह्म" शब्दको उठाके खृष्टानोंके "गाड" के गलेमें लटका दिया है। इस उपलक्ष्यमें नवीन लोग ब्रह्म, ईश्वर या भगवान् नामधारी किसी वस्तुको अपनेसे ऊपर होनेकी कल्पना करनेको बाध्य हुए हैं। इस प्रकारकी बनावट बहुत दिन पहलेसे चली आ रही है। मुसलमानोंके राजत्वकालमें रामानुज और सायनाचार्य्य प्रभृति वैष्णवगण प्रादुर्भूत हो उसी भावसे वेदके ज्ञानकाण्ड और कर्म्मकाण्डके भाष्यकी रचना करनेमें प्रवृत्त हुए थे। इनमें रामानुजाचार्य्य व्यासके उन सब वेदान्तसूत्रों पर ऐसा भाष्य कर गये हैं, मानो वह द्वैतवादकी रक्षाके लिये ही रचित हुआ है। उसका कोई मूल्य नहीं। अब मैं बताता हूं, कि वह मूल अद्वैतवाद किस प्रकार द्वैतवाद हो सकता है। उसका नाम परिणामवाद है। रामानुज प्रभृतिने वेदान्तसूत्रका जो मतलबी भाष्य किया है, वह कोई वाद ही नहीं, पण्डिताई मात्र है। व्यासके वेदान्तसूत्रोंकी इस प्रकार "विशिष्टाद्वैतवाद" के नामसे व्याख्या की गई है, मानों वह वैष्णव मतका ही है। "विशिष्टाद्वैतवाद" शब्द ही चालाकीसे भरा है—जो अद्वैत है—जिसमें कोई विशेषता नहीं, उसे विशिष्ट अद्वैत कहना धोखा देना है।

परिणामवाद,—"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या" अद्वैतवादी लोग कहते हैं, कि यह मिथ्या रस्सीके सांपकी तरह केवल विवर्त्त मात्र है।

परिणामवादी लोग कहते हैं, कि जगत्को मिथ्या कैसे कहें ? जैसे दही दूधका परिणाम है, जैसे बरफ पानीका परिणाम है; वैसे ही जगत् सत्यका परिणाम है। रस्सी और सांपकी जगह रस्सी सत्य और सर्प मिथ्या है; किन्तु दूध और दहीके बारेमें ऐसा नहीं, जैसे दूध सत्य है वैसे ही उसका परिणाम दही भी सत्य ही है। इसलिये मूल सत्य जैसे सत्य है, उसका परिणाम यह जगत् भी सत्य ही है। सुतरां द्वैतवाद सिद्ध हुआ। आगम प्रमाणका यही कहना है,— "मायान्तु प्रकृतिं विद्यात्।" जिसे माया शक्ति कहते हैं, उसीका दूसरा नाम—प्रकृति है। यह सत्य पदार्थ जैसे मायाशक्तियुक्त वैसे ही प्रकृतियुक्त भी है। अतएव प्रकृति (शक्ति) युक्त वह सत्य-पुरुष प्रकृतिकी विकृतिके कारण जैसे जगत्-रूप धारण करते हैं, वैसे ही वह जगत् भी सत्यपुरुषका ही परिणाम है। सुतरां जगत् सत्य है। सगत्के सत्य होनेकी वजह ही जगत्के अन्तर्गत योगका आश्रय कर योगी उस सत्यमें प्रवेश कर सकते हैं। जगत् मिथ्या होता, तो ऐसा न होता।

परिणामवादी लोग जगत्के आकारमें परिणत प्रकृतिको चौबीस भागोंमें विभक्त कर महत्, अहङ्कार और तनमात्रादिके क्रमसे जिस परिणामको प्राप्त होते हैं, उसे उन लोगोंने बहुत ही स्पष्ट रूपमें संख्या कर समझाया है। संख्या करके समझानेकी वजह ही इसका नाम सांख्यदर्शन हुआ है। विवर्त्तवाद द्वारा मूलका अद्वितीयत्व और परिणामवाद द्वारा सद्वितीयत्व सिद्ध होता है। इन दोनों विवादोंमें मूल सत्य ठीक ही रहता है, केवल जगत्के लिये ही विवाद है। परिणामवाद विशेष रूपसे प्रतिपादन करता है, कि जगत् प्रत्यक्ष है। क्षण-क्षणमें उसका परिणाम भी होता दिखाई देता है। यह बात सहज ही अनुमान की जा सकती है, कि मूल सत्यका परिणाम ही जगत् है। इसके बाद आगम प्रमाण "ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्यात्" मन्त्रसे जगत्के आकारमें सत्यकी परिणति बताते हैं। "एक ही मैं बहुत

रूपमें जन्म लेता हूं" प्रभृति वाक्योंमें भी यही पाया जाता है। अतएव प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम; इन तीन प्रकारके प्रमाणों द्वाराही सत्यके परिणाम जगत्को भी सत्य मानना उचित है।

उपनिषत्की बातें मान कर ही विवर्त्तवादी लोग रस्सीके सर्पकी भांतिं जगत्को सत्यका विवर्त्त बताते हैं; इस उपनिषत्के अतिरिक्त बाकीके मन्त्र ब्राह्मणात्मक समस्त वेद इहलोक, परलोक, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य, यज्ञ, दान, तपस्या प्रभृतिकी व्यवस्था दे जगत्की सत्यताको दिखाते हैं। एक शब्दमें कहा जा सकता है, कि वह कर्म्मकाण्ड ही वेदका सार है। कारण, पदार्थ कार्य्यरूपमें परिणत होता है; कारणके सत्य होनेपर कार्य्य जगत् भी सत्य हुए बिना रह नहीं सकता। हमलोग कार्य्य-जगत्में रहते हैं, इस कार्य्य-जगत्को मानकर ही इसके कारण सत्यको पा सकते हैं। सांख्यविद्या द्वारा संख्या कर कार्य्य-जगत्को विभक्त किया जाता है। और योग द्वारा उन सब विभक्त व्यापारोंका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यही सत्यके पानेका उपाय है। उपनिषत् भी इसकी साक्षी देता है,—"तत् कारणं सांख्ययोगाधिगम्यम्।"

मैं देखता हूं, कि धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष; यह चार पदार्थ हैं। इनमें काम और अर्थ स्थूल हैं; इसे साधारण लोग समझ सकते हैं। आजकल का सत्य-जगत् केवल काम और अर्थमें ही मतवाला है। उनमें दीर्घजीवनकी कामना (काम) है; किन्तु उसका साधन कर नहीं सकते। पहलेके दीर्घजीवन-कामी लोग सशरीर स्वर्गमें जा दीर्घ-जीवनका भोग करते थे। अन्यान्य लोग शरीरका पालन कर स्वर्गसुख भोगते थे। वह लोग आजकल स्वर्गवासी हैं। मरनेके अन्तमें सुखसे रहनेके लिये ऐहिक अर्थ साध्य नहीं; इसीके लिये धर्म्म करना पड़ता है। वह धर्म्म और धर्म्मजनित स्वर्ग, हमलोगोंके प्रत्यक्ष नहीं; हमलोग साधारण बुद्धिसे जो मान नहीं सकते,

उसे आगम प्रमाण द्वारा समझलेते हैं। यह धर्म्म आगम प्रमाण-मूलक है। सुतरां स्वर्ग भी वैसा ही है। इसीसे हमलोग अपने अबोध्य विषयोंको वेद-स्मृतिकी सहायतासे निर्णय कर लिया करते हैं। जगत्के मिथ्या होनेसे धर्म्म, अर्थ और काम, यह त्रिवर्ग भी मिथ्या हो जाते हैं। कर्म्मकाण्ड वेदसे यह त्रिवर्ग साधित होते हैं और चतुर्थवर्ग जो मोक्ष है, उसकी भी राह मिल जाती है। इसलिये जगत् जैसा है, वैसा ही मानके धर्म्मसाधन करना चाहिये। उस धर्म्मको आगम प्रमाण द्वारा स्थिर करना पड़ता है। और किसी तरह भी धर्म्म किया जा नहीं सकता। जिस आगम द्वारा चार्व्वाक्, बौद्ध, जैन प्रभृतिके ज्ञानके अतीत पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक प्रभृति स्थिर किये जाते हैं, उसी आगमकी सहायतासे ही तुम्हें धर्म्मका साधन करना पड़ेगा। तुम जो ईश्वर भगवान् प्रभृति शास्त्रोक्त नाम रखके अपने नियन्ताकी कल्पना करते हो; उसके द्वारा किसी प्रकारका धर्म्म हो नहीं सकता। उसकी दयाकी भी कोई आशा नहीं।

वह आगम-सम्मत धर्म्म कैसा है? इस तत्त्वको पण्डित लोग भी सहज ही स्थिर कर नहीं सकते। इसके लिये आचार्य्य जैमिनिने कुछ सूत्रोंकी रचना कर दी है, उसका नाम पूर्व्वमीमांसा या मीमांसा-दर्शन है। शंकरस्वामी इन सब सूत्रोंके भाष्यकर्त्ता हैं। यह पूर्व्वमीमांसा परिणामवादके अन्तर्गत है।

खास परिणामवादका नाम लेनेसे कपिल-कृत सांख्यको ही समझना चाहिये। प्रकृतिनाम्नी शक्ति द्वारा जगत्के आकारमें परिणत उस सत्यपुरुषको प्रकृतिसे पृथक् करके दिखाना ही सांख्यविद्याका लक्ष्य है। इस सांख्य-दर्शनको चाहे जिस उपायसे आयत्त किया जा सकता है उसका नाम योगदर्शन है। महाभारत प्रभृतिमें वह योग-दर्शन भी मौजूद है। उस पर पतञ्जलिने योगके सम्बन्धमें कितने ही सूत्रोंकी रचना की है। स्वयं व्यासमुनिने उन सूत्रोंके भाष्यकी रचना कर योगमें प्रवेश लाभ करनेके लिये सुविधा कर दी है।

आरम्भवाद,—इस वादमें सत्यका विवर्त्त या परिणाम जगत् माना नहीं गया है। यह भी समझमें नहीं आता, कि वह सत्यपुरुष या ब्रह्म हैं या नहीं। यह जगत्‌को भी यथार्थ नहीं कहता। यह कहता है, कि बहुत ही सूक्ष्मसे सूक्ष्म कुछ परिमाणु हैं, वह द्वाणुक, त्राणुक आदि क्रमसे स्थूलसे भी स्थूल होते होते जगत्‌की रचना आरम्भ करते हैं। इसीसे इसका नाम आरम्भवाद है वह सब परमाणु नित्य और जगत्‌के कारण हैं। यह वाद जगत्‌के परमाणुको परिणाम नहीं कहता। जैसे कितने ही अक्षरोंको इकट्ठा कर अर्थात् कम्पोज कर उलटे तरहकी लिखावट तैयार करना पड़ता है, उन इकट्ठे किये हुए उलटी लिखावटके अक्षरोंका परिणाम नहीं, अक्षरकी तरह स्थायी भी नहीं। वैसे ही परमाणु द्वारा जगत्‌के आरम्भके काम या मकान और महलके दृष्टान्त द्वारा समझना चाहिये। ईंट, सुरखी, चूना, लकड़ीको अलग अलग रखने पर उसे एक एकका ढेर कहा जाता है। उन्हींको मजदूरोंके जोड़ बटोर देनेपर मकान बन जाता है। यहां जैसे ईंट, सुरखी, चूना और लकड़ी सत्य है, वैसे स्तूप या मकान सत्य नहीं, परिणाम भी नहीं। परमाणु द्वारा जगत्‌का आरम्भ होना भी वैसे ही है। परमाणुके नित्य होनेपर भी रचित जगत् नित्य नहीं है। वैनाशिक (बौद्ध) और विवर्त्त वादियोंकी तरह इस वादमें भी जगत् सत्य नहीं। इस वादका नाम है—आन्वीक्षिकी, न्याय या तर्क विद्या। आस्तिकदलका दर्शन होने पर भी वास्तवमें इसे नास्तिकमत-विशेष कहना पड़ेगा। वेदान्त सूत्रके भाष्यमें शङ्कराचार्य्यने इसे "अर्द्ध-वैनाशिक" अर्थात् अर्द्ध नास्तिक मत बताया है। "वैशेषिकराद्धान्तः सोऽर्द्ध वैनाशिक इति।" १८ सूत्रभाष्य २ अ० २ पा० वेदान्तदर्शन। महाभारतमें ऐसे तर्कविद्यानुरक्तको सब विषयोंमें सन्दिग्ध मूर्ख और नास्तिक कहा गया है और इस जन्ममें धूर्त्तताका व्यवहार करनेका फल परिणाममें शृगाल होना दिखाया है। यथा,—"अह-मासं पण्डितको हेतुको वेदनिन्दकः। आन्विक्षिकी तर्कविद्यामनुरक्तो

निरर्थिकाम् ॥ नास्तिकः सर्व्वशङ्कीच मूर्खः परिडत मारिकः। तस्येयं फल निर्व्वृत्तिः शृगालत्वं मम द्विज ॥" (१८० अध्याय शृगालकाश्यप संवाद मोक्ष शान्तिपर्व्व महाभारत।) यह आरम्भवाद वेदवाक्य-मूलक नहीं है, न्याय अर्थात् तर्क द्वारा जैसा हो सकता है, वैसी ही बातें हैं। कुछ परमाणुओं द्वारा जगत्की रचना आरम्भ हुई है, इस लिये इसका नाम आरम्भवाद हुआ। गौतम-कृत न्याय सूत्र और कणादकृत वैशेषिक सूत्र नामक दो पुस्तकें इसी वादके ग्रन्थके नामसे मिलती हैं। अब उसमें आरम्भवाद नहीं। मुझे उसमें प्रधान त्रिदोष दिखाई देता है।

१। यह न्यायशास्त्र या तर्कविद्या अर्द्धनास्तिक या पूर्ण नास्तिकवाद है।

२। यह दोनो ही पुस्तकें, बौद्ध दर्शन-विशेष और उसका बौद्ध संस्करण मात्र हम लोगोंको मिला है। इससे यह समझना कठिन है, कि बौद्धोंकी पहलेकी तर्कविद्या कैसी थी।

३। इसमें बादको इतनी खाद मिलाई गई है, कि अब वह दर्शनके नामसे गिना जा नहीं सकता। यह एक प्रकारका नया ही ग्रन्थ हो गया है।

लाचार कहना पड़ेगा, कि आरम्भवादका दर्शन आजकल प्रचलित नहीं। पुस्तकोंकी दुकानका सूचीपत्र देखनेसे, कुसुमाञ्जलि, चिन्तामणि, मणिप्रभा, चिन्तामणिकी दीधिति, उसकी टीका, भाषा-परिच्छेद, तत्त्वचिन्तामणि, तर्कभाषण, तर्कसंग्रह, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, न्यायप्रदीप, सिद्धान्तचिन्तामणि प्रभृति हजार हजार तर्ककी पुस्तकोंका नाम दिखाई देगा। किन्तु कहना पड़ता है, कि इनमें एक भी आरम्भवादका ग्रन्थ नहीं। कारण, उसके मूल कणादकृत वैशेषिक और गौतमकृत न्यायदर्शनमें आजकल आरम्भवाद मिलता ही नहीं। आगे चलके यह दिखाया जायेगा, कि इस तरह आरम्भवादकी दुर्शशा कैसे हुई। यहां मैं इतनाही कहे देता हूं, कि

५

कणादके नामसे वैशेषिक दर्शनका कोई सूत्रकर्त्ता नहीं था। पूर्व्ववर्त्तियोंने प्रकाशित किया है, कि कण अर्थात् परमाणु संग्रह करके वैशेषिक दर्शन बना है, इस अर्थसे उसे "कणाद-मत" या "कणभुजां मत" कहते हैं। आजकलके मनुष्योंने उसी वैशेषिकको "कणाद मुनिवर", "कणाद महर्षि" कृत दर्शन बताया है। इसके सबसे पहले सूत्र द्वारा ही मान लिया जा सकता है, कि वह किस विषयका ग्रन्थ है। वह यह है,—"अथातो धर्म्मं व्याख्यास्यामः।" मीमांसा-दर्शनका प्रथम सूत्र भी ठीक ऐसा ही है; यथा—"अथातोधर्म्मजिज्ञासा।" अब समझो, कि "धर्म्मव्याख्या करेंगे" का वचन देके जिस वैशेषिक ग्रन्थके आरम्भमें प्रतिज्ञा दिखाई देती है, उस मीमांसा-दर्शनको न्याय धर्म्मग्रन्थके अतिरिक्त आरम्भवाद कैसे माना जाये? न्याय दर्शनका भाव इससे भी अधिक है। आगे-पीछेकी पर्य्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि शङ्कराचार्य्यके बादके बौद्धोंने गौतम-बुद्धके नामसे गौतमसूत्र (न्यायदर्शन) की रचना की है। नास्तिक वात्सायन ही उसके भाष्यकर्त्ता हैं। हिन्दू वाचस्पति मिश्रने उसके ऊपर टीकाकर गौतम-सूत्रके भावोंको बदलते हुए हिन्दूग्रन्थोंमें उसको स्थान दिया। बादके नैयायिक पण्डितोंने उसमें कुछ मिला-जुलाके असंख्य न्याय ग्रन्थोंकी रचना कर डाली है। इस प्रकार जो न्यायदर्शन तैयार हुआ, उसके सूत्रकर्त्ता शायद अहल्यापति गौतम ठहराये गये हैं। गौतमने जिस प्रयोजनके उपलक्षमें न्याय-दर्शनकी रचना की, उसके बारेमें कहा जाता है, कि उन्होंने चार्व्वाक् आदि नास्तिक मतोंका खण्डन कर ईश्वरको जगत्का कारण दिखाने और सन्देह दूर करते हुए वेदका अर्थ स्थिर रखनेके लिये ही उसकी रचना की यथा,—"एतच्छास्त्रप्रयोजनं चार्व्वाकादि मतनिराकरण-पूर्व्वकं जगत्कारणतया ईश्वरसंस्थापनं संशयादिनिरूपणे वेदार्थ निर्णयश्च। (न्यायदर्शनकारो गौतमः।) शब्दकल्पद्रुममें न्यायशब्द देखना चाहिये। सुतरां गौतमकृत न्यायदर्शनको आरम्भवादका

ग्रन्थ माना जा नहीं सकता, उसे नास्तिकमत खण्डनका ग्रन्थ विशेष समझना चाहिये; किन्तु सूत्रका भाव और ही है। यह केवल तर्क द्वारा सभामें जीतनेका कायदा-कानून और कौशल जान पड़ता है। नये नैयायिक लोग तो गौतमसूत्रकी खबर भी नहीं रखते, उनलोगोंकी पण्डिताई दीधिति, उसकी टीका-टिप्पनी भाषा परिच्छेद और वादार्थवादमें ही है। इससे ही वह लोग समझते हैं, कि सूत्रकारने नास्तिकमतके खण्डनके लिये ही ऐसे तर्क जालका विस्तार किया होगा। उन सब पण्डितोंने ही शब्द कल्पद्रुमकी रचना की है।

आस्तिक दर्शनमें जो विवर्त्त, परिणाम और आरम्भ,—यह तीन वाद हैं, विना इन तीनों वादके कोई दर्शन हुआ ही नहीं, होगा भी नहीं और हो भी नहीं सकता। इस तत्त्वको कितने पण्डित जानते हैं? अरे कोई कोई पूर्व्ववर्त्ती दूसरे ही तरहकी वातोंसे इन तीन वादको प्रकाशित करना चाहते हैं। यथा,—विवर्त्तवाद-असत् कार्य्यवाद। परिणामवाद—सत्कार्य्यवाद। आरम्भवाद-सत्कारणवाद। इस स्रोतमें ले जानेसे नास्तिक शून्यवादको असत्कारणवाद कहा जा सकता है। किन्तु ऐसा कहना उचित नहीं। असत्कार्य्यवादमें जगत्को उड़ा केवल सत्यको ही माना गया है; सत्कारण वादमें भी ऐसा ही है। सत्कार्य्यवादमें कारण सत्य है; सुतरां जगत् कार्य्य और सत्य, दोनो ही सत्य है। असत् कारण (शून्य) वादमें वह कारण और कार्य्य दोनो ही मिथ्या है। जो दर्शन इस प्रकार सभी शून्य देखता है, वह कुछ भी नहीं देखता,—वह दर्शन नहीं—अदर्शन मात्र है; अतएव असत् कारणवाद (नास्तिकका शून्यवाद) दर्शन ही नहीं; इसीसे यह वात कही गई। पूर्व्वोक्त तीन वादके अतिरिक्त दर्शन हो ही नहीं सकता।

आरम्भवादका खण्डन।

इसके वाद आरम्भवाद जिस प्रकार आस्तिक दर्शन न होनेपर शङ्कराचार्य्यके कहनेके अनुसार अर्द्ध-वैनाशिक मत ठहरता है; वह

कहा जाता है। शङ्कराचार्य्यके समयमें प्रचलित न्यायसूत्र रचित हुआ था। उस समय उसमें वैशेषिक दर्शनके कितने ही सूत्र थे। शङ्कराचार्य्यने उसे ही अर्द्ध-वैनाशिक मत बताया है। उसका कारण यह, कि वैनाशिक-(बौद्ध-)-गण जैसे जगत् कार्य्य और उसका कारण, इन दोनोंको ही शून्य कहते हैं, वैसे ही तर्कवादी वैशेषिकगण उसका आधा अर्थात् कारणको कायम रख कार्य्य जगत्को शून्य बताते हैं; अतएव वह लोग अर्द्धशून्यवादी होते हैं। याद रखना चाहिये, कि महाभारतमें तार्किकको नास्तिक कहा गया है। महाभारतका वह तर्क या आन्विक्षिकी कालक्रमसे सूत्रके आकारमें विवद्ध होते होते शङ्कराचार्य्यके समय वैशेषिकके नामसे विख्यात हुआ था। वेदान्त दर्शन २ अ० २ पा० ११।२१।१३।१४।१५।१६।१७।१८ सूत्रसे व्यास मुनिने उस मतका खण्डन किया। १८ सूत्रके भाष्यके आरम्भमें शङ्करने इस खण्डनके भावको संक्षेपमें प्रकट किया,—"वैशेषिकराद्धान्तो दुर्य्युक्तियोगाद् वेदविरोधात् शिष्टापरिग्रहाच्च नापेक्षितव्यइत्युक्तं सोऽर्द्धवैनाशिक इति।" वैशेषिक मतसे दुष्युक्ति, वेद-विरोध और प्राचीन सज्जनोंका अनादर मौजूद रहनेसे वह अग्राह्य है। अब कहना यह है, कि शङ्करने जगत्को सत्य न कहकर यदि वैशेषिकको अर्द्धवैनाशिक कहा, तो इससे उनके वेदान्तका अद्वैतवाद भी तो अर्द्ध-वैनाशिक हो जाता है। यह बहुत कठिन मामला है। अद्वैतवादको "अर्द्धवैनाशिक" माननेमें कोई हर्ज नहीं। इससे लोग कह सकते हैं, कि जिस तरह तर्कविद्या (वैशेषिक) महाभारतमें नास्तिकताके नामसे निन्दित हुई, उसी तरह अर्द्ध-वैनाशिक अद्वैतवाद भी नास्तिक मत क्यों नहीं है। इस जगह आस्तिकता और नास्तिकताके सूक्ष्मतत्त्वको लेकर विचार करना चाहिये। जो लोग अद्वैतवादको असत्कार्य्यवाद और आरम्भवादको सत्-कारणवाद और परिणामवादको सत्कार्य्यवाद कहना चाहते हैं, उनकी बातोंमें दोष दिखाई देता है। वह यह है, कि अद्वैतवादी

लोग जगत्को असत् बताते हुए जिस सत्यको सत् कहते हैं, यदि आरम्भवादी लोग उसे ही सत्कारण कहते तो कोई दोष नहीं था। किन्तु विवर्त्त (अद्वैत) वादियोंके लिये जो सत्य है, वह आरम्भ-वादका सत् कारण नहीं। यहां हमें यह स्पष्ट करना है, कि अद्वैत सत्य आरम्भवादका सत्कारण नहीं। इसीसे मैं कहता हूँ, कि आरम्भवादके सत्कारण नामसे जगत्के कारणस्वरूप परमाणुको समझना चाहिये। और अद्वैतवादके सत्यके नामसे बुद्धिके अगस्य आगमप्रतिपाद्य किसी वस्तुका अस्तित्वमात्र जान पड़ता है;--वह जगत्का कारण नहीं। सुतरां वेदान्तके उस सत्यको तार्किकलोग सत् (परमाणु) नहीं कहते। तब तर्कविद्याका सत्कारण क्या है? परमाणु या वह सत्य वस्तु; यही विचारके योग्य है। वैशेषिक दर्शनके चतुर्थ अध्यायके प्रथमाह्निक प्रथम सूत्रमें यथा--"सदकारण-वन्नित्यम" लिखा है (१) जो सबका कारण है, जिसका कोई और कारण नहीं, वह अकारणवत् है, वह क्या है?--परमाणु। यह परमाणु ही नित्य और सत् है। यदि कहो, कि सूत्रमें तो परमाणु शब्द नहीं;--अतएव "सदकारणवन्नित्यम्" कहनेसे अद्वैतवादके सत्यको क्यों नहीं मानते? इसके जवाबमें मैं यह कहूंगा, कि अद्वैतसत्यका कोई कार्य्य या लिङ्ग हो नहीं सकता। उसके बादके द्वितीयसूत्रमें उसके कार्य्य और लिङ्गका उल्लेख है। यथा,--"तस्य कार्य्यं लिङ्गम् (२)" उपस्कारः--"तस्य परमाणोः कार्य्यं घटादि लिङ्गम्"। विवृतिः--"तस्य मूलकारणस्य कार्य्यंत्रसरेणवादिकार्य्य-द्रव्यम्।" भाष्यं--कार्य्येण हि लिङ्गेन कारणमनुमीयते। सोऽयं परमाणुरिति। वैशेषिकमतसे जगत्का कारण परमाणु माना गया--सदकारणवन्नित्यम् विवर्त्तवादमें (अद्वैतवादमें) जगत् मिथ्या है, उसका कारण भी मिथ्या है। चरम सत्यवस्तु जगत्का कारण नहीं। फलतः उस परमाणुके कारणवादी लोग परमाणुके बाद और किसीको नहीं मानते। मानें कैसे? वह लोग तो वेदके प्रमाणको ही स्वीकार

नहीं करते। बौद्धोंकी तरह प्रत्यक्ष और अनुमान, यह दो ही उनके प्रमाण हैं। "प्रमाणञ्च द्विधाऽमीषां प्रत्यक्षं लैङ्गिकं तथा।" षड्दर्शन-समुच्चयः। इसीसे इन तर्कविद्याके अनुरक्तोंको महाभारतमें नास्तिक कहा है।

आस्तिक और नास्तिक।

जन्मान्तरीण संस्कार द्वारा यह जिनके हृद्गत रहता है, कि आगम-वाक्य तृतीय प्रमाण है, वह लोग यदि विद्यावलसे उस चरमसत्यको न भी जानें, तव भी उन्हें आस्तिक कहा जा सकता है। आन्वीक्षिकी तर्कविद्याके अनुरक्त लोग वैसी आस्तिकताका पोषण न करनेकी वजह ही वैसे तार्किक हो नहीं सकते। वह लोग जगत्के कारणको नित्य और सत् समझने पर भी नास्तिक ही हैं। आजकल ईश्वर और भगवान्के भक्त यदि वास्तवमें कोई हैं, तो उन्हें सिवा नास्तिकके आस्तिक माननेका कोई उपाय नहीं; कारण, (क) वह लोग चरम सत्यतक नहीं पहुंचे। (ख) उनके हृदयमें यह भी नहीं, कि आगम प्रमाण है; यदि है, तो आगमको न मानकर दश आदमियोंकी देखा-देखी ईश्वर और भगवान्को क्यों मानते हैं? वाहरसे सब माना जाता है, किन्तु भीतर वैसे ही संस्कार जन्मान्तरके सञ्चित न रहनेसे उसके माननेका कोई मूल्य ही नहीं। आस्तिकताके स्थिर करनेके लिये भीतरी संस्कारके प्रति लक्ष्य रखना चाहिये।

दर्शनके नामसे कोई शास्त्र नहीं।

मैंने दर्शनके सम्बन्धमें इतनी बातें कहीं, फिर भी प्रधान बातको अभी तक नहीं कहा। वह यह कि हम लोग जो दर्शनशास्त्रके नामसे सर्व्वप्रधान शास्त्र समझते हैं; वह ठीक नहीं;—दर्शनके नामसे कोई शास्त्र ही नहीं। यह जो प्रसिद्ध "चारवेद और चौदह शास्त्र" की बातें प्रचलित हैं, उन चौदह शास्त्रोंमें दर्शनके नामसे कोई शास्त्र नहीं।

वेदान्तसूत्र, सांख्यसूत्र, योगसूत्र, पूर्व्वमीमांसा सूत्र, वैशेषिक सूत्र और न्यायसूत्रके नामसे जो प्रसिद्ध षड़दर्शन ग्रन्थ प्रचलित हैं, यह सभी गत चार हजार वर्षोंमें रचे गये हैं; इससे पहले यह सब नहीं थे। प्राचीन समयमें षड़दर्शनके नामसे छः सूत्रग्रन्थोंके न रहने पर भी उनका उपादान था। वह वेदके चार उपाङ्ग हैं,—यथा, मीमांसा, धर्म्मशास्त्र, न्याय और इतिहास पुराण। इनमें इतिहास पुराणके अतिरिक्त तीन उपाङ्ग तीनों वादके मूल हैं। उन्हीं तीन वादसे छः दर्शन हैं। इसलिये दर्शनको इतिहास माना जाता है।

षड़्-दर्शनका इतिहास।

मैंने अपनी पहली उम्रमें नावेल नहीं पढ़ा; उस समय हिन्दी भाषामें नावेलोंका जन्म भी हुआ न था। मेरी युवावस्थामें बङ्गालके साहित्यिक बङ्किम बाबूने "दुर्गेशनन्दिनी" और "कपालकुण्डला" नामक दो नावेलोंकी सृष्टि सबसे पहले की। इस पर भी क्या यह कहना उचित है, कि नावेल थे ही नहीं? नानीजी भोजन करानेके समय तोता-मैनाकी कहानी और दालके झगड़ेकी कहानी सुनाया करती थीं; बुढ़ियायें मुझे खिलोना बनाके सारा दिन व्यतीत कर देतीं थीं; क्या इसे नावेल नहीं कह सकते? यह भी नावेल है; किन्तु पहले उसका नाम और ही था, आजकल नावेलके नामसे प्रचलित हुआ है। ऐसे ही समझना चाहिये, कि कुरुक्षेत्र युद्धके समय कोई दर्शनशास्त्र नहीं था। मैं उसका प्रमाण देता हूं,—पहले कुरुक्षेत्रके युद्धके समयका हिसाब काश्मीरकी राजतरङ्गिणीमें लिखा है,—"६४३ कल्याब्दमें कुरु-पाण्डवगण मौजूद थे"; माना जाता है, कि ६०३ कल्याब्दमें पाण्डवोंने परीक्षितको राज्य दे महाप्रस्थान किया था। उसके ३६ वर्ष पहले ६०७ कल्याब्दमें कुरुक्षेत्र युद्ध हुआ। ६५३ कल्याब्दके परवर्त्ती ३४ वर्षके भीतर महाभारतकी रचना हुई। उन्हीं परीक्षितके राज्यकालमें पराशरने मैत्रेय मुनिसे विष्णु पुराण

कहा। निश्चय हुआ, कि उस समय तक भी षड़्दर्शनका जन्म नहीं हुआ। आजकल ५०२७ कल्याब्द चल रहा है। इसीसे कहता हूं, कि कल्याब्दकी सातवीं शताब्दिके अन्तमें अर्थात् वर्त्तमान समयसे पहले तीन चार हजार वर्षके भीतर षड्दर्शनने जन्म लिया है।

शास्त्रकी नामावलीमें दर्शनका नाम नहीं।

वर्त्तमान समयसे पांच सौ वर्ष पहले श्रीधरस्वामीने उस विष्णु-पुराणकी टीका की है। इसीसे विष्णु पुराणको अन्यान्य अनेक पुराणोंकी तरह अप्रमाणित कहा नहीं जाता। उस विष्णुपुराणके ३ य अंशके ६ ठें अध्यायमें चार वेद और चौदह शास्त्रका नाम है। यथा—"अङ्गानि चत्वरोवेदा मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्म्म-शास्त्रञ्च विद्याह्येताश्चतुर्दश। आयुर्व्वेदो धनुर्व्वेदो गान्धर्व्वश्चैव ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थन्तु विद्याह्यष्टादशैव ताः॥"

विद्याके मूल स्थान चार वेद हैं। वेदके छः अङ्ग और चार उपाङ्गोंसे पहले चौदह संख्या हुई। इसके बाद चार उपवेदके मिला देनेसे अट्ठारह संख्या हुई। उन चार वेदोंके अतिरिक्त उसके १४ आनुषङ्गिकोंको लौकिक भाषामें चौदह शास्त्र कहते हैं। वेदके छः अङ्ग हैं,—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष। चार उपाङ्ग हैं,—मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्म्मशास्त्र। चार उपवेद हैं,—आयुर्व्वेद, धनुर्व्वेद, गान्धर्व्ववेद और अर्थशास्त्र। यही चार वेदके अतिरिक्त चौदह शास्त्र हैं। इनमें हमारे परिचित दर्शनशास्त्रका नाम नहीं। जैसे नावेल नानीजीकी कहानीमें छिपा था, वैसे ही षड्दर्शन भी इन चौदह शास्त्रोंमें निहित है। वेदके नित्य होनेकी वजह उसके आनुषङ्गिक यह चौदह शास्त्र भी हर कल्पमें सृष्टिसे ही प्रकट होते हैं। फिर भी उसके रूपका अवश्य ही कुछ न कुछ परिवर्त्तन होता रहता है।

वेदके चार उपाङ्गसे षड्दर्शनका जन्म ।

उपाङ्ग—पुराणं धर्म्मशास्त्रञ्च मीमांसा न्यायविस्तरः ।

१ म मीमांसा, २ य धर्म्मशास्त्र, ३ य न्याय, ४ र्थ पुराण हैं। मीमांसासे पूर्व्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा या वेदान्तसूत्र हुआ, धर्म्मशास्त्रसे सांख्य और योग तथा न्यायसे न्याय और वैशेषिक, यह छः दर्शन हुए हैं। चौथा उपाङ्ग पुराण पुराण ही रहा।

व्यासमुनिने उक्त मीमांसा (वेदान्त सूत्र) की रचना की है और व्यासके शिष्य जैमिनि पूर्व्व मीमांसाके कर्त्ता हैं। इन दो मीमांसाओंके सूत्र प्राचीन समय आजकलकी तरह छपे हुए न होने पर भी ब्राह्मण लोग स्वयं उसकी आलोचना और मीमांसा करते थे। वही विष्णुपुराणमें कही हुई प्रथम मीमांसा है। मनुसंहितामें लिखा है,— "आर्य्यं धर्म्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केनानुसन्धत्ते स धर्म्मं वेद नेतरः।" वेद और स्मृति शास्त्रके उपदेशको तर्क द्वारा न समझके यदि कोई साहित्यकी तरह उसका अर्थ करे, तो कोई भी धर्म्मको समझनेमें समर्थ नहीं होता। वह तर्क भी ऐसा-वैसा तर्क नहीं, ऐसा तर्क होना चाहिये, जो वेद-वचनको न काटे। तर्क विद्याका नाम न्याय है। उस समयके ब्राह्मण लोग वेदानुगत तर्क द्वारा ज्ञानकाण्ड और कर्म्मकाण्डसे वेदके भावोंका उद्धार करते थे।

उस तर्कके अनुशीलनकारियोंने क्रमसे नाना प्रकारके तर्क करनेके कौशलोंका आविष्कार किया। ऐसा करते करते तर्क करनेकी सीमाको (वेदके विरुद्ध न होकर) कितने ही लोग खो चुके। समय पाके उसीसे आरम्भवाद उत्पन्न हुआ। उस समय ऐसे तर्ककी सहायतासे सहज ही सभामें जयी होकर विलक्षण सम्मान पाया जाता था। इसी उपलक्ष्यसे महाभारतमें तर्कविद्याके अनुरक्तोंको नास्तिक प्रभृति कहते हुए गाली दी गई है। रामायणके अयोध्या-

६

काण्डमें इस तर्कविद्याको आन्वीक्षिकी और उसके सेवकोंको लोकायतिक (चार्व्वाक) कहते हुए निन्दा की गई है। यथा,—

कच्चिन्नलोकायतिकान् ब्राह्मणान् तात सेवसे।
अनर्थं कुशलाह्येते वाला पण्डितमानिनाः॥
धर्म्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्व्बुधाः।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरथं प्रवदन्ति ते॥"

वर्त्तमान समयसे प्रायः तीन हजार वर्ष पहले जिस समय इस देशमें वौद्धमत अधिकताके साथ प्रचलित था, उस समय ऐसे न्याय या तर्कविद्याका वहुत आदर होता था। "वैशेषिकसूत्र" और "न्यायसूत्र" की रचनाका वही समय माना जाता है। वास्तवमें वेदके उपाङ्ग (३ य) न्यायका अवलम्वन कर वर्त्तमान समयका न्याय और वैशेषिक दर्शन रचित हुआ है।

कल्याब्द द्वारा उसके समय निर्देशका यत्न किया जाता है। कुरुक्षेत्र युद्धके हजारों वर्ष वाद कल्याब्दकी सत्रहवीं शताब्दिके मध्यभागमें मगध-सिंहासन पर नन्द नामक शूद्रराजाने प्रतिष्ठित हो द्वितीय परशुरामकी तरह पृथिवीको निःक्षत्रिया वनाया। तवसे शूद्रराज्यका प्रचलन हुआ। साथ ही साथ वौद्धमतका विस्तार घटा। सम्भवतः परवर्त्ती तीन सौ वर्षोंमें वौद्धमतका एकाधिपत्य स्थापित हुआ था। इसके वाद कुमारिल भट्ट और शङ्कराचार्य्यने आविर्भूत हो वौद्धमतका ध्वंस करते हुए फिर ब्राह्मण्य (हिन्दू) मतका प्रचार किया। प्राचीन ग्रन्थों और ताम्रशासनादि द्वारा कल्याब्दकी २७०० शताब्दिमें कुमारिल और शङ्कराचार्य्यका होना माना जाता है। अतएव आजकलसे २४०० सौ वर्ष पहले शङ्कराचार्य्यादिका समय मानना पड़ता है। शङ्कराचार्य्यने वेदान्त सूत्रके भाष्यमें विविध मतका खण्डन करनेमें प्रवृत्त हो वैशेषिक दर्शनके कई एक सूत्रोंका उल्लेख किया है; किन्तु उन्होंने न्यायसूत्रका नाम भी नहीं लिया। इससे जान पड़ता है, कि न्यायसूत्र २७०० कल्यांब्दके वाद रचा गया।

प्राचीनकालका (३ य) न्याय अर्थात् आन्वीक्षिकी तर्कविद्याके बौद्धोंके हाथ पड़नेसे वैशेषिक और न्याय यह दो दर्शनके आकारमें विभक्त हुए। उनमें वैशेषिकका परमाणु कारणवाद द्वारा आरम्भवाद माना गया। न्याय अर्थात् तर्क करनेके कला-कौशल द्वारा वह दृढ़ या प्रचारित हुआ है। यह समझनेके लिये, कि उस तर्कका कायदा कानून कैसा है, प्रचलित न्यायके प्रथम सूत्रसे दिखाया जा सकता है। यथा,—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान,—इन सोलहोंके स्वरूपोंको जानना आवश्यक है। इसके द्वारा जगत्के कारण परमाणुको "सदकारणवन्नित्यम्" सहज ही प्रमाणित किया जा सकता है। ऐसा होनेसे जो जगत्के रूपमें दिखाई देता है, वह जगत्-दर्शनका व्यापार मिथ्या ज्ञान मालूम होगा। जगत्के मिथ्या समझनेसे उसीके साथ दुःख भी मिथ्या हो जाता है। यही तर्कशास्त्रका निःश्रेयस, अपवर्ग या मोक्ष है। यह वेदसे असङ्गत न्याय है। और तर्क करनेके सोलहो कौशलोंका प्रयोग कर वेद-स्मृतिका अर्थ निकालनेसे वेदके उपाङ्गके नामसे जिस न्यायका उल्लेख चौदह शास्त्रोंमें दिखाया गया है, वही वेदसङ्गत न्याय है; इस विशेषताको मानना आवश्यक है।

इसके बाद वेदके उपाङ्ग (२ य) धर्म्मशास्त्रकी बातें कही जाती हैं। उस प्राचीनकालमें मनु, अत्रि, विष्णु प्रभृति वेदका स्मरण कर उसके भावको दूसरे वचनों द्वारा प्रकट करते थे, वही विष्णु पुराणोक्त (२ य) धर्म्मशास्त्र या स्मृति शास्त्र है। यह कर्म्मकाण्ड वेदकी व्याख्या माना जाता है। विना समझे स्मृतिशास्त्रका कर्म्म करनेके लिये प्रवृत्ति नहीं होती, इसलिये सांख्यका विचार आवश्यक है। सांख्यके विचारसे सत्यपुरुषका परिणाम जगत् सत्य होता है, कर्म्मकाण्ड करके स्वर्ग जाना सत्य व्यापार है; यह पहले ही कहा गया है, कि सांख्य उस राहको दिखा देता है; परिणाम-वादके कारण

स्वरूप एकमात्र सत्यपुरुषको मायाशक्ति-(प्रकृति) से युक्त देखने पर जगत् उसका परिणाम होता है; इसलिये जगत् सत्य ठहरता है। वैदिक कर्म्मानुष्ठान भी सत्य हुए विना रह नहीं सकता। सांख्य विद्या जगत्के आकारमें परिणत उस सत्यको टुकड़े टुकड़े कर समझा देता है। योग द्वारा वह सब विभागादि प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। इस प्रकार जगत्को अतिक्रम कर उस सत्यपुरुषमें प्रवेश करनेकी राह मिलती है। पूर्व्वोक्त प्राचीन पुरुषगण जिस सांख्य और योगकी विशिष्ट आलोचना करते थे, उसके तरह तरहके इतिहास महाभारतमें पाये जाते हैं। महाभारतके समय तक उस सांख्य और योगके सूत्रोंको बनानेकी आवश्यकता नहीं थी। कहानीकी तरह उसकी आलोचना होती थी। ऐसा कहा जाता था, कि सांख्यके मूलवक्ता कपिल, योगके वक्ता ब्रह्मा और पञ्चरात्रके वक्ता विष्णु थे। यथा,—

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भोयोगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः ॥"

(महाभारत, मोक्षशान्ति पर्व्व ३३९ पृष्ठा।)

प्रचलित पातञ्जल योगसूत्र या पातञ्जल दर्शन महाभारतके बाद रचित माना गया है। यह पातञ्जल योगसूत्र और वेदान्तसूत्र तथा पूर्व्वमीमांसा सूत्र, यह तीनों ही असामयिक और महाभारतके बाद तथा शूद्रराज्यके आरम्भसे पहलेका रचा हुआ मान वर्त्तमान समयसे प्रायः चार हजार वर्ष पहलेका माना गया है। ब्राह्मण लोग इन तीनों ग्रन्थोंको ही स्मृतिके नामसे मानते हैं। जैमिनि-कृत मीमांसा ही हमलोगोंके लिये वेदके जैसा प्रामाण्य है। यह बात कुमारिल भट्ट निजकृत मीमांसाके श्लोकमें वार्त्तिक कह गये हैं; यथा—"यथाधर्म्मावरोधस्य प्रमाणं वैदिकंवचः। तदर्थनिर्णये हेतुर्जैमिनीयं तथैव नः ॥"

छः दर्शनोंमें पूर्व्व और उत्तर मीमांसा तथा पातञ्जल योगसूत्र, यह तीनों सूत्रग्रन्थ ब्राह्मणोंके आदरकी वस्तु है। न्याय और वैशेषिक

दर्शनके नामसे जो दो सूत्रग्रन्थ मिलते हैं, वह वैसे नहीं। न्याय अर्थात् तर्क करनेके लिये पूर्व्वोक्त जो सोलह प्रकारके कायदे हैं, वह तर्कके उपायमात्र हैं; दर्शन नहीं। तब भी बौद्धोंने उसे पृथक दर्शनके नामसे तैयार किया है। इसके सम्बन्धमें बादको कहा जायगा। वैशेषिक दर्शनके खण्डनकी बातें पहले कही जा चुकी हैं। अब सांख्य-दर्शनका विषय बाकी रहा।

महाभारतसे पहले हिरण्यगर्भ ब्रह्माकी कही हुई योगकी कहानी प्रचलित थी। पतञ्जलिने उसे संक्षेप कर सूत्रके आकारमें योगसूत्रकी रचना की। कपिलकृत सांख्य महाभारतके समय जैसा था, अबतक उसका संक्षेप सूत्र बनाकर किसीने भी योगसूत्र वैसा सूत्र नहीं बनाया। इस हिसाबसे कहा जाता है कि आजतक सांख्य-दर्शनने जन्म नहीं लिया। महाभारतादिमें हमलोगोंको जो सांख्यमत दिखाई देता है, जान पड़ता है, कि उसे संक्षेप सूत्रके आकारमें प्रकट किया नहीं जाता। इसलिये आजतक वैसा सूत्रग्रन्थ नहीं बना; फिर भी महाभारतादिमें जो सांख्यमत कहा गया है, उसे ही सांख्य-दर्शन कहना उचित है। किन्तु हमलोगोंने जिस समय जन्म ग्रहण किया है, उस समय सूत्रग्रन्थ और उसका भाष्य न रहनेसे, उसे दर्शन कहनेको सहज ही प्रवृत्ति न होती। समाजकी इस अवस्थामें ऐसा एक सूत्र-ग्रन्थ भाष्यके साथ प्रकाशित हुए बिना न रहता। वैसा ही हुआ भी है। "विज्ञानभिक्षु" के नामसे प्रचलित किसी व्यक्तिने उस कठिन सूत्रग्रन्थके भाष्यको "सांख्य प्रवचन भाष्य" के नामसे प्रचारित किया। किसी-किसीका अनुमान है, कि उन विज्ञानभिक्षुने स्वयं ही सूत्रकी रचना कर स्वयं ही भाष्य भी किया है।

मूलमें दर्शनके नामसे कोई शास्त्र नहीं था। वेदका उपाङ्ग मीमांसा, धर्म्मशास्त्र और न्याय इन तीनों विषयोंके उपलक्षमें परवर्त्ति समयमें रचे गये सूत्रग्रन्थादि आजकलके दर्शनशास्त्र बताये जाते हैं।

केवल मैं ही यह बात कह नहीं रहा हूं, अकबर बादशाहके समयके प्रसिद्ध मधुसूदन सरस्वतीने भी अपने प्रस्थानभेद ग्रन्थमें यही दिखाया है।

शङ्कराचार्य्यके समय भी दर्शनशास्त्रका नाम रखा नहीं गया। बौद्ध और जैन लोग भिन्न-भिन्न मतको भिन्न-भिन्न दर्शन कहते थे, इसके बाद हमलोग वास्तविक भावको न समझ यह समझते हैं, कि प्राचीन महर्षिगण दर्शन शास्त्रके प्रणेता थे। वेदान्त सूत्र, मीमांसा सूत्र और योगसूत्र, इन तीनों ग्रन्थोंके रचयिता व्यास, जैमिनि और पतञ्जलि थे; इनमें कोई भी महर्षि या ऋषि नहीं। व्यास पूर्व्वजन्ममें ऋषि थे और उनके प्रपितामह वशिष्ठ महर्षि थे।

उपनिषत्‌के वाक्योंमें साधारण वेदज्ञ पुरुषोंको भी प्रवेश करनेकी सामर्थ्य न देख व्यास मुनिने वेदान्त सूत्रकी रचना की। बौद्धाधिकारके समय उस सूत्र द्वारा ब्राह्मणोंको कुछ भी समझते न देख शङ्कराचार्य्यने उन सूत्रोंका भाष्य किया। ऐसा कहा जाता है, कि योगसूत्रके ऊपर व्यासका भाष्य न होता, तो एकाग्र योग असम्प्रज्ञात समाधि अयोगियोंके लिये भी होती; इस विषयको हमलोग समझ न सकते। इन सब भावों द्वारा वेदान्त, पूर्व्वमीमांसा और योगसूत्र तथा भाष्य-रचनाकी आवश्यकता समझमें आती है। किन्तु न्याय, वैशेषिक और सांख्यके नामसे जो सब सूत्र दर्शनके नामसे प्रचलित हैं, उन सूत्रोंकी रचनाकी कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती; उनके भाष्य, दीपिका टीका-टिप्पनीकी बातें तो दूर रहीं।

मेरी इच्छा थी, कि दर्शनके बारेमें यहां तक कहके ही शान्त रहूं। किन्तु न्याय, वैशेषिक और सांख्यके बीच आजकल जैसी ऊपरा-चढ़ी चल रही है और छापाखानोंकी सहायतासे पुस्तकोंके प्रचारमें जो सुविधा हो रही है, उसके बारेमें इसलिये मुझे कुछ कह रखनेकी आवश्यकता हुई है, जिससे दर्शन पढ़नेवाले सरल चित्तके मनुष्य धोखा न खायें।

वेदान्त पूर्व्वमीमांसा और योग दर्शनके सूत्रोंके प्रचारकी आवश्यकता एक प्रकारसे कही गई। अर्थात् बढ़ाये हुए सूत्रोंकी सूचना दी गई। चार वेदके उपनिषत् भागके सुविस्तृत होनेकी वजह वेदान्त सूत्रमें उसकी संक्षिप्त सूचना की गई। वेदका कर्म्मकाण्ड असीम है, उसकी मीमांसा संक्षेपमें कर पूर्व्व मीमांसामें सूत्र द्वारा दिखाया गया है। इसी प्रकार हिरण्यगर्भ ब्रह्माका योग-व्यापार भी असीम है। पतञ्जलिने योगसूत्रमें उसे संक्षेपमें दिखाया है। तर्क विद्याके बारेमें जो न्याय और वैशेषिक सूत्र रचित हुए हैं और सांख्यविद्याके लिये जिस सांख्यसूत्रकी रचना की गई है, वह व्यासादि जैसे उच्च भावोंसे पूर्ण नहीं। उदाहरण स्वरूप सांख्यसूत्रका कुछ रहस्य कहा जाता है।

प्रचलित सांख्यसूत्र धोखा मात्र है।

हजार वर्ष पहले स्वर्गीय कृष्ण द्वारा रचित "सांख्य-कारिका" नामक ७२ श्लोक इस देशमें उस सांख्य सूत्रके स्थलवर्त्ती थे। उस समय वाचस्पति मिश्र षड़दर्शनकी टीका करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने सांख्यतत्त्व कौमुदीके नामसे उस सांख्यकारिकाकी ही टीका की है और वंशधर मिश्र तत्त्वविभाकरके नामसे उस कौमुदीकी बहुत बड़ी टीका कर गये हैं। आजतक यह कारिका, कौमुदी और तत्त्वविभाकर तीनों ही मौजूद हैं। इधर वाचस्पति मिश्रके बाद या उनके समकालमें किसी गुमनाम सूत्रकारने सांख्यसूत्र या सांख्य-दर्शन नाम रख छः अध्यायविशिष्ट एक सूत्र ग्रन्थकी रचना की। विज्ञानभिक्षुने उसीका भाष्य किया है।

आजकलके लोग समझते हैं, कि दर्शनशास्त्र होनेसे उसके सूत्र और भाष्यको भी होना चाहिये। ऊपर कही सांख्यकारिकाका सूत्र भी नहीं और उसका भाष्य भी नहीं। इसलिये बाजारमें विज्ञानभिक्षुका भाष्ययुक्त सांख्यसूत्र ही सांख्यदर्शन बन गया है। इससे सांख्य-

कारिकाने हार मानी है। हमारे पूर्व्ववर्त्ती लोग जिन वाचस्पति मिश्रको षड़दर्शनका टीकाकार बताते थे, वह उनकी मूर्खता थी,— हमलोग उसी गोबरमें कमल बनके उत्पन्न हुए हैं। जो लोग परीक्षाके लिये पाठ्यपुस्तकोंका चुनाव करते हैं, उनकी नासमझीकी वजह यह सांख्यसूत्र पाठ्यपुस्तक मानी जाती है।

उस सांख्यसूत्रके बाजारमें सांख्यदर्शनका आसन ग्रहण करने पर भी मैं उसे घृणाकी दृष्टिसे देखता हूँ। सांख्यकारिकाके ७२ श्लोकोंसे जो सांख्यविद्या प्रकट हुई है, सांख्यके सूत्रकारोंने उसके लिये पांच सौ सूत्रोंकी रचना की है। यही न सांख्यका संक्षेप सूत्र है? इस कारसाजीको समझके भी क्या गुमनाम सूत्रकर्त्ताको व्यास, जैमिनि और पतञ्जलिकी बराबरीमें बैठाया जा सकता है? हमलोग ऐसा करें या न करें, किन्तु दर्शनकार बननेके लिये वह सांख्यसूत्रकी रचना करनेको वाध्य हुए थे। हमारी पाठ्य पुस्तकोंके चुननेवालोंने सांख्य सूत्रके रहस्यको न समझके ही उसे पाठ्यपुस्तकोंकी सूचीमें शामिल कर दिया है। वह सूत्रकर्त्ता नामके न सही कामके एक बौद्ध ही थे; यह उनके सूत्रोंसे ही जान पड़ता है। उनका सबसे पहला सूत्र है,— "त्रिविधदुःखस्यात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थ।" सबसे आखीरमें है,— "यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः।" दुःख दूर करना ही पुरुषका चरम कर्त्तव्य है; यह बात बौद्धोंके वैनाशिक मतसे स्थिर हुई है, किन्तु व्यास, जैमिनि और पतञ्जलि, इन तीनोंके किसी सूत्रग्रन्थमें भी ऐसा नहीं है। ग्रन्थके आखीरमें उन गुमनाम सूत्रकर्त्ताने न जाने किस वस्तु द्वारा उस त्रिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिका होना स्थिर करना चाहा है। इसके लिये उन्होंने कर्म्म, अविवेक और लिङ्ग शरीर प्रभृति कई एक दुःखके हेतुका उदाहरण दिया है; किन्तु उनमें एकको भी यथार्थ हेतु कायम न कर सकनेकी वजह अन्तमें उन्होंने कहा है,—वह चाहे जैसा हो या न हो, उसका उच्छेद करना ही पुरुषार्थ है। यहां यह कहना पड़ता है, कि तब तो यह अच्छे दार्शनिक

ठहरे ! यदि अन्तमें अपनी बात ही रख न सके, तब उन्होंने इतने सूत्र बनाके नाहक श्रम क्यों किया ? हमलोगोंको त्रिविध दुःखसे दूर करनेकी राह दिखानेके लिये वह सूत्रकी रचना करने बैठे थे। अन्तमें वह कुछ भी स्थिर न कर सके, कि किसका उच्छेद करनेसे दुःख दूर होता है। हमलोग किसका उच्छेद करके दुःख दूर करें ? ऐसे बेवकूफ सूत्रकारोंकी बातें आजकलके बाजारोंमें ही बिक सकती हैं।

यदि वह वास्तवमें बुद्धिमान होते, तो पहले यह स्थिर करके ही सूत्रकी रचना करते, कि त्रिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति कैसे हो सकती है। सूत्रकारकी अवस्था देखके ज्ञान पड़ता है, कि उन्होंने सांख्यकी कितनी ही पुस्तकें उलट डालीं, किन्तु उसमें प्रवेश कर नहीं सके। वह स्थिर कर गये हैं, कि जगत्‌में कोई भी इससे अधिक सांख्यकी व्याख्या कर नहीं सकता; फिर भी जिसका उच्छेद करना चाहिये, उसकी कोई स्थिरता नहीं। यहां कहा जा सकता है, कि दुःखनिवृत्ति नामक बौद्ध भावको न मान और सूत्रकारने जिसका उच्छेद करनेको कहा है, उसके अर्थके लिये कोई यत्न न करके भी सांख्यविद्याकी सहायतासे जगत्‌को अतिक्रम कर (केवल) अकेले रहा जाता है। ऐसा होनेसे पुनरावृत्तिकी सम्भावना नहीं रहती। हमारी यह बातें महाभारतके नीचे लिखे श्लोकोंसे उद्धृत हैं।

"संख्याः प्रकुर्व्वते चैव प्रकृतिञ्च प्रचक्षते।
तत्त्वानिच चतुर्व्विंशत् परिसंख्याय तत्त्वतः।
सांख्याः सह प्रकृत्यातु निस्तत्त्वः पञ्चविंशतः॥
यदातु बुध्यतेऽनत्माहं तदा भवति केवलः।
सम्यग् दर्शनमेतावद् भाषितं तव तत्त्वतः॥
नत्वेवं वर्त्तमानानां यावृत्तिर्विद्यते पुनः॥"

(महाभारत शान्ति मोक्षपर्व्व ३०६ अध्याय)।

फलतः बौद्धोंकी दिखाई राहसे दुःख दूर करनेके लिये यत्न न करने पर भी सांख्य और योगकी वास्तविक राह पकड़नेसे जगत्‌के

साथ ही साथ दुःखको दूर किया जा सकता है। इस तत्त्वको सांख्यके सूत्रकार जानते न थे।

वह गुमनाम सूत्रकर्त्ता दर्शनकर्त्ताकी प्रसिद्धि हासिल करनेके लिये ही इतने सूत्रोंकी रचना करनेमें प्रवृत्त हुए थे। व्यास जैसे सूत्रकर्त्ता और शङ्कर जैसे भाष्यकर्त्ता बननेका प्रलोभन आजकलके राजा, राय बहादुर प्रभृति उपाधिकी लालचकी तरह मादकता-जनक है। बड़े पण्डित होनेसे ही सूत्रकार, भाष्यकार होनेकी संक्रामक व्याधियोंसे ग्रस्त होना पड़ता है; सांख्यके सूत्रकार भी ऐसी ही व्याधिसे ग्रस्त थे। भाष्यकार होने पर भी व्याधिग्रस्त होना दिखाई देता है।

भाष्य करनेका रोग-विशेष।

वैशेषिक दर्शनका प्रशस्तपाद भाष्य सदासे प्रसिद्ध है। उक्त चन्द्रकान्त भट्टाचार्य्य उन्हें भाष्यकारके आसनसे ढकेल स्वयं भाष्यकार बन बैठे हैं। खोजनेसे पता नहीं चलता, कि चन्द्रकान्तके इस भाष्यका महदुद्देश्य क्या है। चन्द्रकान्तने भाष्यकी भूमिकामें इतना ही लिखा है, कि प्रशस्त पादका भाष्य बाजारके प्रचलित भाष्यके लक्षणके साथ नहीं मिलता। नहीं मिलता तो न मिले; इसमें चन्द्रकान्त या हमलोगोंका क्या नफा-नुकसान है? ऐसा तो कोई नियम है नहीं, कि एक सूत्रग्रन्थ हो, तो उसका भाष्य भी होना ही चाहिये। सूत्रोंके कठिन होनेसे ही उसकी टीका, टिप्पनी, भाष्य या दीपिका बनाकर उसे समझाना पड़ता है। आजकल वैसी कठिनता नहीं। स्वर्गीय पण्डित चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशयने उस भाष्यकी भूमिकामें ही लिखा है,—"दर्शनशास्त्राणां सूत्रेषु यादृशं काठन्यमुपलभ्यते तादृशं किमपि काठिन्यमत्र नास्ति।" यदि यह अन्यान्य दर्शनोंकी तरह कठिन नहीं था, तो भाष्य करनेका श्रम क्यों स्वीकार किया गया?

यहां सूत्रकी सरलताके प्रति कुछ ध्यान देनेकी आवश्यकता है। चन्द्रकान्त भट्टाचार्य्य महाशयने भूमिकामें यह लिखनेके बाद ही

लिखा है,—"यद्यपि सांख्यषड्ध्यायिसूत्राणां प्रायेण सारल्यमस्ति।" इस भूमिकाकी बातोंसे अन्यान्य दर्शनोंके सूत्रोंकी अपेक्षा सांख्यसूत्र और वैशेषिक सूत्र बहुत सरल बताये गये हैं; इसे मैं भी स्वीकार करता हूँ। फिर भी चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशयने वैशेषिक सूत्रकी प्रचलित व्याख्याके प्रति देखनेके लिये सूत्रोंको सरल बताया है। मैं समझता हूं, कि अनभिज्ञ लोगोंके ही ऐसे सांख्यसूत्र और वैशेषिक सूत्रकी रचना करनेसे ही सूत्रोंमें व्यास, पतञ्जलि और जैमिनि जैसे गूढ़ार्थोंको शामिल कर नहीं सके।

चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशय वैशेषिकका भाष्य करनेके साथ ही साथ उसके सूत्रकर्त्ताको एक महर्षि बनाये बिना नहीं रहे। उन्होंने भूमिकाके आरम्भमें ही लिखा है,—"वैशेषिकदर्शनमिदं कणाद-महर्षि प्रणीतम्।" इसके बाद अपनी बातको बनाये रखनेके लिये उन्होंने खूब वकालती भी की है। जिसके भावसे समझमें आता है, व्यास पतञ्जलि प्रभृति ऋषि या महर्षि नहीं थे। उन्हीं व्यासके वेदान्तसूत्रका भाष्यकर शङ्कराचार्य्य जगद्विख्यात हुए; चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशयने किसी समय महर्षिके सूत्रका भाष्य कर डाला।

मैंने पहले ही कहा है, कि परमाणु-कारणवादियोंका लक्ष्य कर वैशेषिक दर्शनको "कणाः (परमाणु) अत्ति" इस तरह कणादगणका दर्शन कहते हैं। स्वार्थके अनुरोधसे इस समय कणाद नामक व्यक्तिको वैशेषिकका रचयिता कहा जाता है। कमसे कम शङ्कराचार्य्य वैशेषिकको कणाद नामक व्यक्तिका ग्रन्थ नहीं समझे; वह तो केवल कणभक्षकारियोंका मत ही मानते थे। यदि शङ्कर कणादके नामसे किसी व्यक्तिको समझते, तो अपने भाष्यमें वैशेषिक सूत्रको रखते हुए "इति हि काणभुजानि सूत्राणि" न कह कर कणादसूत्र कहनेको बाध्य होते। इसी भाष्यमें उन्होंने और एक जगह कहा है,—"परमाणवो जगतः कारणमिति कणभुगभिप्रायः।" (वेदान्त दर्शन २ य, अ०, पा ११,१२ सूत्रभाष्य)। अब समझिये, स्वार्थ ऐसा ही है, जो रातको

भी दिन बना देता है। चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारने अपनी भूमिकामें व्याख्या की है, कि महर्षि कणाद चावलके कण (खुद्दी) खाके जीवित रहे। किन्तु उन्होंने यह नहीं बताया, कि यह बात उन्हें कहांसे मिली। यह शङ्कराचार्य्ये लिखित कण-भक्षण करनेवालोंकी बातको छिपानेकी वासना मात्र है। इसलिये मैं यह कहने पर बाध्य हुआ हूँ, कि जो लोग यह जानना चाहते हैं, कि दर्शन शास्त्रमें क्या है, (परीक्षा पास करनेकी बात अलग है) उन लोगोंको ऐसी टीका-टिप्पनी-भाष्य और दीपिकाओंके वाग्‌जालसे आत्मरक्षाके लिये सबसे पहले प्रस्तुत रहना चाहिये। जैसे वकील और वारिष्टर लोग जजको बहसकी धारामें बहाते हुए अपनी ओर ले आना चाहते हैं, वैसे ही यह लोग भी पाठकको अपनी बातोंमें फँसा बांध रखनेका यत्न करते हैं। इसलिये बुद्धिमान् व्यक्तिको आत्मरक्षाकी व्यवस्था करना चाहिये।

बुद्धिमान व्यक्तियोंको आत्मरक्षा करना चाहिये।

मैं केवल इन्हीं भाष्यकारको नहीं कह रहा हूँ; वरं शङ्कराचार्य्यने भी वेदान्त सूत्रका भाष्यकर बड़ा झगड़ा खड़ा कर दिया है। रामानुज प्रभृति वैष्णवोंने पण्डिताई दिखाते हुए उस वेदान्त सूत्रकी कितने ही प्रकारकी भाष्यरचना कर उसके द्वारा यह समझानेका यत्न किया है, मानों उसमें उनके ही उपास्य देवताओंकी बातें कही गई हैं। इन सब झूठी बातोंमें फँसनेसे पहले ही दर्शनतत्त्वके जिज्ञासु व्यक्तियोंको यह मामला समझ लेना चाहिये। केवल भाष्यादिका ही मामला नहीं, दर्शनके सूत्र भी विचारके योग्य हैं।

न्याय और वैशेषिक—दोनों ही तर्कशास्त्र हैं। मीमांसा और धर्म्मशास्त्रादिमें साधारण लोगोंका प्रवेश न होने पर भी तर्क करनेकी थोड़ी-बहुत क्षमता प्रायः सब लोगोंमें ही मौजूद है। वेदका उपाङ्ग न्याय अर्थात् तर्क या आन्वीक्षिकी ग्रन्थ जब बौद्धोंके हाथसे हमारे पास आये हैं, तब यह बात सहज ही समझमें आ जाती है, कि

बौद्ध लोग ब्रह्मण्य मतके तर्क (वेद शास्त्राविरोधिना तर्केण) को ठीक नहीं रख सके हैं। बुद्धिमान व्यक्तिगण वैशेषिक सूत्रग्रन्थके प्रति ऐसा सन्देह न करें, इसलिये ही भाष्यकार महामहोपाध्याय चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशयने उन सूत्रोंको एक ही व्यक्ति द्वारा रचित और वह व्यक्ति कणाद महर्षि थे तथा वेदान्तसूत्रके "महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्" सूत्रमें वैशेषिकके "महत्यानेकद्रव्यवत्त्वात् रूपाच्चोपलब्धिः।६" प्रभृति सूत्रोंका उल्लेख दिखाते हुए यह समझानेका प्रयत्न किया है, कि वर्त्तमान वैशेषिक सूत्रके सभी सूत्र वेदान्त सूत्रके अथवा महाभारतसे भी पहले मौजूद थे। ऐसी दशामें क्या हमलोगोंको यह समझना चाहिये, कि उसमें बौद्धोंने वैशेषिकके कितने ही सूत्रोंका अदल-बदल नहीं किया ? इस विषयमें वैशेषिक सूत्र और न्याय सूत्रकी एक ही अवस्था मानी जाती है। न्याय सूत्रके प्राचीनत्वके सम्बन्धमें स्वाधीन व्यक्तियोंने जैसा स्थिर किया है, उसे मैं आगे दिखाता हूँ।

न्याय और वैशेषिकमें मिलावट।

"आजकल किसी किसी ऐतिहासिक पण्डितोंकी समालोचनासे यह भी प्रकट हुआ है, कि प्रचलित न्याय-दर्शनके अधिकांश सूत्र ही परवर्त्ती समयमें दूसरोंके द्वारा रचित हुए हैं। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्यायके बाद रचना करके मिलावट की गई है। इन सब अध्यायोंमें बौद्धमतकी आलोचना है और बौद्ध युगमें रचित हुआ और मूल न्यायशास्त्र केवल हेतुविद्या है, इसमें अध्यात्मविद्याकी कोई बात ही नहीं थी।" (फणिभूषण तर्कवागीश सम्पादित न्याय दर्शनकी भूमिका २० पृष्ठा देखना चाहिये।) उनके साथ मैं भी एकमत होकर कहता हूँ, कि वैशेषिक दर्शनके "अधिकांश सूत्र ही बादको दूसरेके द्वारा रचे गये हैं" और मूल वैशेषिक सूत्र केवल हेतुविद्याका निर्देश है; "उसमें अध्यात्मविद्याकी कोई बात ही नहीं थी।" इस विषयको क्रमशः प्रमाणित करनेका यत्न करना चाहिये।

हम मूल वैशेषिक दर्शनको खास हेतु विद्या न कह कर हेतु विद्याका निर्देश क्यों न कहें ? पहले ही कहा गया है, कि वेदके उपाङ्ग न्याय (तर्क) के अनुशीलनमें रत ब्राह्मणोंने समयसे तर्ककी सीमा (वेदका मानना) अतिक्रम कर डाला। और यह भी निर्देश किया कि आगमके अतिरिक्त केवल तर्क द्वारा जगत्के सृष्टि-व्यापारको कैसे माना जाय। उस आरम्भवाद और तर्क करनेकी जिन सब शृङ्खलाबद्ध प्रणालियोंका आविष्कार किया गया, वहीं खास तर्क है। और उस तर्कलब्ध सृष्टिका आरम्भवाद ही वैशेषिक दर्शन हुआ और तर्क करनेका कायदा न्याय-दर्शन माना गया। वेदका उपाङ्ग न्याय है, इस प्रकार वेदको अमान्य करनेसे जान पड़ता है, कि वह महाभारतसे पहले ही दो भागोंमें विभक्त हो रहा था। इसीसे महाभारतमें तर्क विद्याकी इतनी निन्दा हुई है। इसीलिये ऐतिहासिक लोगोंने कहा है,—"मूल न्यायशास्त्र केवल हेतु विद्या है, उसमें अध्यात्मविद्याकी कोई बात ही नहीं थी।"

आजकलके न्याय-वैशेषिकसे अध्यात्मविद्याके हिस्सेको अलग कर देनेसे जो बाकी बचेगा, उसीमें यथाथ न्याय और वैशेषिक दर्शन मिलेगा। इससे असल सूत्र और लोगोंके रचे हुए नकल सूत्रोंको चुननेकी राह मिलेगी अथवा यह जान सकनेसे, कि न्याय और वैशेषिकमें मौलिक कौन है, इसके अतिरिक्त बाकीके सूत्र या सूत्रांशकी आध्यात्मिक और नवीन रचना मानी जा सकती है।

न्याय और वैशेषिकका मौलिक क्या है ?

मैंने जिस तर्क करनेके शृङ्खलाबद्ध कायदे या प्रणालीको खास तर्क बताया, वही न्याय-दर्शनके मौलिक सोलह पदार्थ हैं। उन्हीं तर्क करनेके सोलह प्रकारके कायदोंको वेदके अनुगत रख प्राचीनकालमें तर्क द्वारा वेदार्थके निकालनेका नियम था। उसीका नाम वेदका उपाङ्ग न्याय था। और वेदको अतिक्रम कर इन १६ प्रकारके

कायदोंको चलाते हुए जिस आरम्भवादका गठन किया गया, वही परमाणुवाद या वैशेषिक दर्शन है। शङ्कराचार्य्यने वेदान्तभाष्यमें वैशेषिक मतका खण्डन करनेके समय जैसे परमाणु कारणवादका खण्डन किया, वैसे ही उसीके साथ वैशेषिकके द्रव्य, गुण, कर्म्म, सामान्य, विशेष और समवाय, इन छः पदार्थोंका भी खण्डन किया है। अतएव न्यायके मौलिक १६ पदार्थोंकी तरह वैशेषिकके प्रसिद्ध छः पदार्थमें मौलिकता पाई गई।

पण्डित फणिभूषण तर्कवागीशने अपने न्याय-दर्शनकी भूमिकाके २७ पृष्ठामें हस्तलिखित देवीपुराणसे न्यायके उन सोलहो पदार्थोंके आविष्कारका ऐसा इतिहास दिया है,—"शिव जब गौतम मुनिको वर देने आये, तब उनके वाहन वृषने अपने दांतोंसे न्यायके उन प्रमाणादि सोलह पदार्थोंको लिखके दिखाया। दर्शयन् दन्तलिखितान् प्रमाणादींश्च षोड़श।" गौतमने उसे पाके शिवके आज्ञानुसार उन सोलह प्रकारके कायदोंसे संयुक्त नास्तिक मतनिवारिणी तर्कविद्यांको दश दिनमें शिष्योंको सिखा दी। "आदेशेन शिवस्यैव स शिष्यान् दशभिर्दिनैः। पाठयामास तां विद्यां नास्तिकमतनाशिनीम्॥" तर्कके सोलह कायदोंसे जैसे वेदार्थ प्रकाश करते हुए नास्तिकताका नाश किया जाता है, वैसे ही वेदको छोड़के नास्तिकताका भी स्थापन किया जाता है उसीके अनुसार आरम्भवादसे नास्तिकता प्रसूत हुई है।" गौतम मुनिके दश दिनमें उन सोलहो पदार्थका उपदेश देनेकी वजह न्याय दर्शनके दश आह्निकोंमें उन प्रमाणादि सोलह पदार्थोंका शेष होता दिखाई देता है।

यदि कहो, कि न्याय दर्शनके कुल दश ही आह्निक हैं, वह यदि उन प्रमाण-प्रमेय प्रभृति सोलह पदार्थकी बातोंमें ही समाप्त हों, तो पीछेसे मिलाये हुए आध्यात्मिक सूत्र कहां मिलेंगे? इसका उत्तर यह है, कि उसके सूत्र हीके कितने अंश प्रक्षिप्त हैं और बहुसंख्यक सूत्रोंकी बादको रचना करके आह्निकोंके भीतर मिला दिया गया है। देवी

पुराणके श्लोक द्वारा गौतमको प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान, इन सोलह प्रकारके कायदोंसे तर्क-विद्याका व्यवहार करनेका उपदेश दिखाई देता है। गौतमने दश आह्निकमें (दिनमें) उसे शिष्योंको समझा दिया था। उन्होंने संक्षिप्त अवस्थामें जो सोलह कायदे सीखे थे, उन्हींको विस्तारके साथ कहनेमें उन्हें दस दिन लगे थे। निश्चय ही उस समय तक सूत्रकी रचना की नहीं गई थी। कारण, विस्तृतको संक्षिप्त करनेके लिये ही सूत्रकी रचना की जाती है। संक्षेपका विस्तार करनेके लिये सूत्र नहीं। गौतमके शिष्य-परम्परासे उस दश दिनके (दश आह्निकमें निबद्ध) तर्क विद्या जब विस्तृत हो पड़ी, (जैसे इस समय सहस्र सहस्र न्यायकी पुस्तकें हो गई हैं,) तब सूत्र द्वारा उसके संक्षिप्त करनेकी आवश्यकता हुई थी। इसके अलावा और कारणोंसे भी सूत्र किया जा सकता है। महाभारतके भिन्न-भिन्न अध्यायमें कितने ही श्लोकोंमें जो सांख्यविद्याका निबन्ध दिखाई देता है, और सांख्यकारिकाके ७२ श्लोकोंमें जो प्रचलित था, उसके लिये पांच सौ सूत्रों द्वारा सांख्यसूत्रके प्रचारका व्यापार देख यह अनुमान किया जाता है, कि गत दो हजार वर्षोंमें इसी प्रकार न्यायसूत्रकी रचना हुई है। पहले कहे हुए गुमनाम व्यक्तिके रचे सांख्यसूत्रको कितने ही लोग कपिल सूत्र अथवा कपिल-रचित सांख्य सूत्र बताते हैं। इस प्रकार गत दो हजार वर्षके रचित वही न्यायसूत्र गौतमसूत्रके नामसे प्रचारित हुए होंगे। अथवा उस समयके सूत्र रचयिता बौद्धोंने अपने पूज्य गौतम बुद्धके नामसे उस दर्शनको गौतमसूत्रके नामसे प्रचारित किया होगा।

यदि आजकलका प्रचलित न्याय दर्शन वही दश दिनका उपदेश (दश आह्निक) होता, तो शङ्कराचार्य्य भी उसे पाते और वह इसकी नास्तिकताको पकड़ लेते। शङ्कराचार्य्यने उस समयके समस्त

वादोंका खण्डन किया; किन्तु न्यायदर्शनके बारेमें उन्होंने कुछ क्यों न कहा? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है, कि न्यायका वैशेषिक हिस्सा छोड़ देने पर जो बाकी रहता है, वह तर्क करनेके सिर्फ सोलह उपाय हैं, वह स्वतन्त्र दर्शन या मत नहीं। शङ्करने स्वयं भी उन्हीं उपायोंको मानके तर्क किया है। शङ्कराचार्य्यके समय न्यायके दश आह्निकमें सोलह पदार्थोंका वर्णन था; उस समय भी आजकलकी तरह न्याय स्वतन्त्र रूपसे एक दर्शन नहीं बना था। इसलिये शङ्करने न्यायके बारेमें कुछ नहीं कहा। प्रमाण प्रमेय प्रभृति सोलह प्रकारके कायदोंसे पूर्ण तर्कपद्धति स्वतन्त्र दर्शन नहीं है। उसीको वेदके अधीन चलानेसे आस्तिक दर्शन और वेदके विरुद्ध चलानेसे नास्तिक दर्शनकी रचना हुई है। शङ्कराचार्य्यके समय उन सोलह प्रकारके विषयोंके दर्शनके आकारमें गठित न होनेसे ही शङ्कराचार्य्यने वेदान्तसूत्रके भाष्यमें न्याय दर्शनका खण्डन नहीं किया। इसी कारण वर्त्तमान न्यायसूत्रका जन्म शङ्कराचार्य्यके बाद गत दो हजार वर्षोंके भीतरका अनुमान किया गया है।

ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है, कि शङ्कराचार्य्यके नास्तिक मतके नामसे वैशेषिक दर्शनके साथ बौद्ध और जैन दर्शनका खण्डन करनेके बाद उन दर्शनोंके आस्तिक दर्शनके नामसे परिचित होनेके लिये कुछ परिवर्त्तन भी हुआ था। तब न्याय स्वतन्त्र दर्शन बनके भी मौजूद था, ऐसा मालूम होता है। यह प्रायः डेढ़ हजार वर्ष पहलेकी बात है।

बौद्ध, जैन, न्याय और वैशेषिकका आस्तिक मूर्त्ति-धारण।

पहले यह इतिहास ही कहा जाता है। पूर्व्वकालमें चित्रकूट पर्व्वतके निकटवर्त्ती चित्तौड़ नामक नगरमें जितारि नामक एक राजा थे। हरिभद्रसूरि जातिके ब्राह्मण इन राजाके पुरोहित थे।

हरिभद्र याकिनी नामक किसी जैन साधुनीके मुखसे एक विचित्र कहानी सुनके विचलित हुए। अन्तमें वह जैन मतसे दीक्षित हुए। इसके बाद हरिभद्र सूरिने "अनेकान्तजयपताका", "ललितविस्तर", "चैत्यवन्दनवृत्ति", "दर्शन-सप्तिका", "मुनिपतिचरित्र", "षड्दर्शन-समुच्चय" प्रभृति १४४४ ग्रन्थोंकी रचना की। ५३५ वें संवत्‌में उनकी मृत्यु हुई। अङ्गरेजी पुस्तकमें लिखा है, कि मेक्समूलरके मतसे ५२८ ईस्वीमें हरिभद्रकी मृत्यु हुई।

वह "षड़दर्शनसमुच्चय" ग्रन्थ १६०५ ई० में काशीके विद्याविलास प्रेसमें छपा। साहित्यदर्शनाचार्य्य दामोदर लाल गोस्वामीने उसमें जो संस्कृत भूमिका लिखी है, उसीसे हरिभद्र सूरिका जीवन वृत्तान्त और मृत्युका समय यहां लिखा गया।

"षड़दर्शन समुच्चय" पुस्तकके आरम्भमें आलोच्य छः दर्शनोंका नाम दिया गया है। यथा,—"बौद्धं नैयायिकं सांख्यं जैनं वैशेषिकं तथा। जैमिनीयं चा नामानि दर्शनानाममून्य हो॥" समाप्तिमें लिखा है,—"एवमास्तिकवादानां कृतं संक्षेपकीर्त्तनम्॥"

इसमें बौद्ध, जैन और वैशेषिक दर्शनमें केवल प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण ही माने जाते हैं, वेद प्रामाण्य नहीं। फिर भी यह आस्तिक दर्शन कैसे हो गये? कारण, बौद्धोंके देवता सुगत (बुद्ध) हैं। जैनियोंके देवता जिनेन्द्र हैं। और न्याय तथा वैशेषिक, दोनों मतके देवता सृष्टि संहारकारी शिव हैं। इससे मालूम हुआ, कि डेढ़ हजार वर्ष पहले वेदको न मानकर भी किसी उपास्य देवताके माननेसे ही लोग आस्तिकोंकी श्रेणीमें शामिल हो जाते थे।

हरिभद्रसूरिके षड़दर्शनसमुच्चयमें ही पहले यह दिखाई दिया, कि न्याय एक स्वतन्त्र दर्शन ग्रन्थ है। नहीं तो अब तक न्याय और वैशेषिक आन्वीक्षिकी तर्कके नामसे ही माना जाता था। हरिभद्रके न्याय और वैशेषिकमें सिर्फ इतना ही अलगाव दिखाई देता है,—

"देवताविषये भेदोनास्ति नैयायिकैः समम् ।
वैशेषिकानां तत्त्वेषु विद्यतेऽसौ प्रदृश्यते ॥" ५६ ॥

नैयायिक और वैशेषिकके देवताओंके विषयमें कोई भेद नहीं; केवल तत्त्वके लिये ही सब कुछ भेद है। वह बताया जाता है। यह कहते हुए उन्होंने न्यायके उन सोलहो पदार्थोंका वर्णन कर न्यायदर्शन समाप्त किया और वैशेषिकके द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय, इन छः पदार्थोंको दिखाते हुए वैशेषिकका वर्णन समाप्त किया है।

मैंने जो न्यायके सोलह और वैशेषिकके छः पदार्थोंको मौलिक बताया है, वह वर्त्तमान समयसे डेढ़ हजार वर्ष पहले भी मौलिक ही था। आजकल न्याय वैशेषिकने नया आकार धारण किया है। यद्यपि आजकल उसमें यथाक्रम वह सोलह और छः पदार्थ पाये जाते हैं, तथापि वही उन दोनों दर्शनोंका यथार्थ मूल नहीं। वैशेषिक-के नये भाष्यकार चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारने प्रथमकार चतुर्थ सूत्रके भाष्यमें कहा है,—"न्यायके सोलह पदार्थ भी वैशेषिकके छः पदार्थोंके ही अन्तर्गत हैं। उनके तत्त्वोंको समझनेसे मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होती है; तब निःश्रेयस या अपवर्गका प्रादुर्भूत होता है। फिर संसार रह नहीं जाता। "मिथ्याज्ञानमूलोहि संसार तदपाये नाव-तिष्ठति। इति।" संसारको अतिक्रम करनेके रूपमें आध्यात्मिकता ही आजकलके न्याय और वैशेषिकका लक्ष्य बन गया है। यह केवल भाष्य और अन्यान्य व्याख्या कर्त्ताओंके अनुग्रहका फल है, यदि वह लोग रोगग्रस्त होके नाम पानेके लिये भाष्यादि न करते, और स्वाधीन भावसे सूत्रकी आलोचना करनेकी क्षमता रखते, तो सूत्रोंकी बनावट पकड़ जाती।

इसलिये ऐतिहासिकोंने वर्णित परिवर्त्तनका लक्ष्य करके कहा है,—"मूल न्यायशास्त्र केवल हेतुविद्या है; उसमें अध्यात्मविद्याका कोई जिक्र ही न था।"

न्याय और वैशेषिकके सूत्रकारोंकी निन्दा ।

शिवके वरदानसे प्राप्त तर्क करनेके सोलह कायदे डेढ़ हजार वर्ष पहले स्वतन्त्र दर्शन बन गये । इसके बाद गत डेढ़ हजार वर्षमें वह मोक्ष पानेके योग्य अध्यात्मशास्त्रके रूपमें दिखाई दे रहा है ।

वह मोक्ष भी बौद्धोंका निर्व्वाण है, अर्थात् शून्य होना मात्र है; इसे मैं बादको दिखाऊंगा । इसीसे कहा जाता है, कि न्याय वैशेषिकका वर्त्तमान परिवर्त्तन बौद्धोंके द्वारा किया गया है और न्यायके सूत्रकी रचना भी उन्हीं लोगोंने की है, किसी गौतमने नहीं किया । जिन गौतमको न्याय दर्शनका रचयिता कहा जाता है, हमारे पहलेके हिन्दू लोग उनकी बड़ी निन्दा करते थे । कुछ कम हजार वर्ष पहले भी यह निन्दा होती थी । इसे पण्डित फणिभूषणने न्याय दर्शनकी भूमिकाके २३ वें पृष्ठमें दिखाया है । उन्होंने कहा है,— "दार्शनिक महाकवि श्रीहर्षने चार्व्वाक् न्यायशास्त्रके वक्ता मुनिको गोतम अर्थात् गोश्रेष्ठ या महावृषभ (सांड़) के नामसे उपहास किया है । "गोतमं तं अवेत्येव यथावेत्थतथैव सः ।" "श्रीहर्षने न्याय-शास्त्रवक्ता मुनिको गोतम ही कहा है ।" (प्रकृष्टो गौः गोतमो महा-वृषभः पशुरेव । टीकाकाराः) ।

परवर्त्ती समयमें वैशेषिक दर्शनके सूत्रका परिवर्त्तन करने और नये सूत्रके मिलानेकी वजह उस दर्शनके सूत्रकर्त्ताओंने भी उलूक (उल्लू) की आख्या पाई है ।

ऐतिहासिकोंका कहना है, कि न्यायसूत्रकारोंके लिये ऐसी निन्दा उचित है; क्योंकि दर्शनमें "अध्यात्मविद्याका कोई जिक्र ही नहीं था" इन दोनोको छोड़ दूसरे हेतुसे भी हम लोग न्याय वैशेषिक दर्शनमें से धर्म्म और मोक्ष-सम्बन्धी बातोंको निकाल देनेकी स्वाधीनता रखते हैं । वह यों है,—वेदका उपाङ्ग-मीमांसा, धर्म्मशास्त्र, पुराण और न्याय; इन चारोंके अन्तमें हमारा न्याय और वैशेषिक है । उसके भीतर

पुराण-इतिहास पानेसे जैसे हमलोग उसे भिन्न शास्त्र समझ निकाल दे सकते हैं, वैसे ही धर्म्म और मीमांसालभ्य मोक्षकी कहानियोंका भी वर्ज्जन कैसे न कर सकेंगे ? न्याय अर्थात् तर्कके भीतर धर्म्म और मुक्ति खपाये नहीं खपती।

वैशेषिक दर्शन अपाठ्य है।

इतनी बातोंके बाद अब प्रचलित न्याय और वैशेषिक दर्शनकी गलतियोंके दिखानेका यत्न किया जा सकता है।

पहले ही कहा गया है, कि दश आह्निकमें वर्णित सोलह पदार्थ तर्क विद्याके विशेष कायदे हैं। उस तर्क विद्याको वेदके शासनको अतिक्रम कर व्यवहार में लाते हुए आत्मवादकी सृष्टि की गई है; वही वैशेषिक दर्शनका विषय है। प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले शङ्कराचार्य्यने अवैदिक बताते हुए उस वैशेषिक दर्शनका खण्डन किया है। अतएव इस समय उसी अवैदिक वैशेषिककी अलोचना आस्तिक ब्राह्मणके लिये उचित नहीं। दूसरी बात यह, कि शङ्करके समय परमाणु कारणवादके नामसे जो आरम्भवाद वैशेषिक दर्शनमें था, वह अब उसमें नहीं है। डेढ़ हजार वर्ष पहले वैशेषिक लोग शिव भक्त थे; उस समय प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंके अतिरिक्त वेदका प्रमाण ग्राह्य नहीं था, अब वेदाभ्यासको प्रमाण नहीं माना जाता। आजकलका वैशेषिक दर्शन धर्म्मशास्त्र-विशेष बन गया है। इस बातको प्रमाणित करनेके लिये पहलेके चार सूत्र और सबसे अन्तके सूत्र, यह पांच सूत्र ही यथेष्ट हैं।

१ म सूत्र—"अथातो धर्म्मं व्याख्यास्यामः।"

जिस पुस्तकके आरम्भमें "धर्म्मव्याख्या करूंगा" कहते हुए प्रतिज्ञा की गई है, वह धर्म्मशास्त्रके अतिरिक्त और कुछ भी समझा जा नहीं सकता।

२ य सूत्र—"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्म्मः।"

जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसका साधन होता है, उसीका नाम धर्म्म है।

इसमें धर्म्मके लक्षणके बारेमें कुछ भी कहा नहीं गया। "जिससे" किससे? फिर भी इससे अधिक लक्षण ग्रन्थमें कहा नहीं गया। किन्तु मीमांसा दर्शनमें वेदने जो करनेको कहा है, उसीका धर्म्मके नामसे स्पष्ट लक्षण दिखाया गया है। इसीसे कहना पड़ता है, कि यह आजकलके लोगोंके रचित सूत्र हैं। बुद्धिमान सूत्रकार ऐसा कर नहीं सकते।

३ य सूत्र—"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।"

उस धर्म्म विषयको हेतु वेद (वेदाभ्यास) मानना पड़ता है। अतएव वेद स्वयं प्रमाण नहीं। क्या हम लोग इसे आस्तिक दर्शनकी बातें कह सकते हैं? बौद्ध नास्तिकोंके अतिरिक्त उस समय ऐसा वेदका अपमान करनेवाला और कौन हो सकता है?

४ र्थ सूत्र—"धर्म्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्म्मसामान्यविशेष-समवायानां पदार्थानां साधर्म्म्यवैधर्म्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।"

धर्म्म विशेषसे द्रव्य, गुण, कर्म्म; सामान्य, विशेष और समवाय, यह छः पदार्थ उत्पन्न हैं। इनके साधर्म्म्य वैधर्म्म्य द्वारा तत्त्व-ज्ञान उत्पन्न होता है और उस तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस अर्थात् अपवर्ग होता है। न्यायसूत्रकी आलोचनामें इस विषयकी व्याख्या की जावेगी।

इसलिये ही वैशेषिक दर्शन धर्म्मशास्त्र मात्र है। ग्रन्थ समाप्त होने तक ऐसी ही बातें चलती चली हैं। इसके प्रमाणके लिये सबसे अन्तका सूत्र दिखाया जाता है, जो और कुछ नहीं, वही तृतीय सूत्र है;—"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति"।

अतएव अब शङ्कराचार्य्यके समयका आरम्भवाद वैशेषिक दर्शन नहीं है। वेदके विरुद्ध तो है ही। इसलिये वैशेषिक ब्राह्मणोंके आलोचना योग्य नहीं।

यदि हम लोग समझ सकते, कि वैशेषिकका दर्शनत्व क्या है, तो सुयोग पाके उसके अर्थके लिये यत्न कर सकते, किन्तु धर्म्मको समझनेके लिये मैं वैशेषिककी अलोचना नहीं करता, वैशेषिक दर्शन धर्म्मशास्त्रसे पृथक् वस्तु माना गया है। अतएव इसके बारेमें मुझे यहां और कुछ नहीं कहना है। न्यायशास्त्र ऐसा नहीं है; उसे वैशेषिक दर्शनकी तरह त्याग देना उचित नहीं।

न्याय पाठ्य है।

तर्क विद्याके सोलह पदार्थ (कायदों) से जैसे वैशेषिक आरम्भ-वाद बना है, वैसे ही उन कायदोंसे वेदको अतिक्रम किये विना व्यवहार करनेसे वेद-स्मृतिके समझनेकी राह मिलती है। इसलिये उन सोलह पदार्थोंके निर्णय करनेवाले ग्रन्थ (न्यायदर्शन) से प्रमाणादि सोलह पदार्थोंका स्वरूप समझना चाहिये। निःश्रेयस, अपवर्ग, मोक्ष प्रभृतिको उससे निकाल देना चाहिये।

अतएव न्याय दर्शनके सूत्रकी आलोचना की जाती है—

१ म सूत्र,—"प्रमाण-प्रमेय-संशय-दृष्टान्त-सिद्धान्ता-वयवतर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-च्छल-जाति-निग्रह-स्थानानां तत्त्व-ज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥"

इन सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस (अपवर्ग) का लाभ होता है। तर्क करनेके इन सोलह कायदोंमें ऐसा कौनसा गूढ़ार्थ मौजूद है, जिससे इन सोलहोंका स्वरूप जाननेसे ही मुक्ति मिलेगी? क्या और किसी तत्वज्ञान द्वारा ऐसा न होगा? मेरे इस प्रश्नका उत्तर न्याय दर्शनका भाष्य, दीपिका, टीकाटिप्पनी आदि सैकड़ो हजारों ग्रन्थमें कोई भी दे नहीं रहा है।

तब भी उस तत्त्वज्ञानसे जिस प्रकार निःश्रेयस होता है, वह द्वितीय सूत्रमें मिलता है।

२ य सूत्र-"दुःख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरांपाये तदन्तरापायादपवर्गः।"

इसका भावार्थ यह है, कि उन सोलह पदार्थोंका तत्त्वज्ञान होनेसे ही जगत् मिथ्या है ऐसा मिथ्या ज्ञान उदित होता है। ऐसा होनेसे क़िसी भी काममें प्रवृत्ति नहीं होती। प्रवृत्ति न रहनेसे जन्मकी सम्भावना रहित होती है। यदि जन्म भी न हो, तो दुःख भी हो नहीं सकता। ऐसा होनेसे ही निःश्रेयस या अपवर्ग मिलता है। इसीसे नवें सूत्रके भाष्यमें भाष्यकारने साफ साफ कहा है,—"सर्व्व दुःखप्रहाणमपवर्गः।" बौद्ध लोग भी इस सर्व्व दुःखको दूर किया चाहते हैं। यदि यह अपवर्ग बौद्धोंका शून्य हो, तब तो "सोनेमें सुगन्ध" मिल जाता है। वास्तवमें न्यायसूत्रका यह "अपवर्ग" ही शून्य या अभाव पदार्थ है। यह बात केवल मैं ही नहीं कहता;— प्रथम सूत्रके भाष्यमें जो "सच्च खलु षोड़शधा" कहा गया है, उसीमें यह मौजूद है। पण्डित फणिभूषणने अपने न्याय दर्शनकी व्याख्याके १८ वें पृष्ठमें विशेष निपुणताके साथ कहा है,—"जैसे प्रमेयके भीतर अपवर्ग अभाव पदार्थ है, वैसे ही प्रयोजनके भीतर दुःखाभाव अभाव पदार्थ है।" अपवर्ग के अभावपदार्थ होनेसे ही उसमें सबका अभाव है, सुतरां दुःखाभावको ही मानना चाहिये। न्याय दर्शनमें जो कहा गया, कि उसमें अध्यात्मविद्याकी कोई बात ही नहीं थी और वह भी बौद्धोंकी कारीगरी थी, उसका सारा हाल अब समझमें आ सकता है।

न्याय, वैशेषिक और सांख्यसूत्र एक ही उद्देश्यसे रचे गये हैं।

वैशेषिक सूत्रसे जो निःश्रेयस और अपवर्ग शब्द पहले दिखाये गये हैं, वह भी यही सर्व्व दुःखाभाव अर्थात् अभाव पदार्थ भी शून्य मात्र हैं। वैशेषिकके व्याख्याकर्त्ताओंने उसे दुःखकी निवृत्ति समझाया

है। पूर्व्वोक्त ४ र्थ सूत्रके उपस्कारमें लिखा है,--"निःश्रेयसमत्यन्त-दुःखनिवृत्तिः"। विवृत्तिकारने और भी साफ साफ लिखा है,--"निःश्रेयसंच न्याय-वैशेषिक-सांख्यमतेषु आत्यन्तिकदुःख-निवृत्तिरूपा स्वसमानाधिकरणदुःखासमानकालीन दुःखध्वंसपर्य्यावसितम्"। समझमें आ गया, कि सांख्य, न्याय और वैशेषिक सूत्रमें चरममें वह दुःखनिवृत्ति ही स्थिर हुआ है। इसीसे मैं समझता हूँ, कि दुःख-निवृत्ति ही सांख्य, न्याय और वैशेषिक, इन तीन दर्शनोंमें जो लोग चरमके नामसे प्रचार किया चाहते हैं, वह लोग बौद्ध हैं; नामके बौद्ध न होने पर भी बौद्धभावापन्न हिन्दू हैं।

शङ्कराचार्य्यके समय जो वैशेषिक सूत्र मिला था, वह आरम्भवाद कहा जाता था। वर्त्तमान समय वैसा ही कोई आरम्भवादी मौजूद होता, तो अपवर्गको शून्य या अभाव पदार्थ स्वीकार न करता। क्यों न करता, इसे मैं बताता हूँ।

आरम्भवादीके न्यायसूत्रकी व्याख्या।

न्यायके प्रथम सूत्रकी व्याख्यामें मैंने यह आपत्ति की है, कि सोलह पदार्थोंका तत्त्वज्ञान होनेसे निःश्रेयस कैसे होगा? द्वितीय सूत्रमें भी "मिथ्याज्ञान" मात्र कहा गया है, किन्तु तत्त्वज्ञान द्वारा उस मिथ्या ज्ञानके होनेकी अवश्यम्भावी सम्भावना दिखाई नहीं गई। कोई आरम्भवादी पण्डित उन दोनों सूत्रोंकी व्याख्या करते, तो इन दोनो आपत्तियोंका खण्डन कर सकते और अपवर्गके अभावको पदार्थ या शून्य न समझते। उनके उस १।२ सूत्रकी व्याख्या ऐसे होती, कि प्रमाणादि सोलह पदार्थोंका तत्त्वज्ञान होने और उसे वेदातिक्रम करनेसे आरम्भवाद निष्पन्न होता अर्थात् यह तत्त्व स्थिर होता, कि परमाणु उपादानसे जगत् उत्पन्न हुआ है। तब ईंट, लकड़ी, सुरखी और चूना ही सत्य होता, उस उपादानसे बना हुआ मकान जैसे मिथ्या है, जगत्के बारेमें भी वैसा ही मिथ्या ज्ञान होता। इस

तरह द्वितीय सूत्रमें लिखा मिथ्या ज्ञान उदित होता है। उसके द्वारा व्यापारमें प्रवृत्ति-रहित, सुतरां जन्म भी रहित होता। ऐसा होनेसे मकान टूटने पर जैसे ईंट, लकड़ी, सुरखी और चूना आदि पड़ा रहता है, मकान नहीं रहता; वैसे ही जगत् भी नहीं रहता। इसीसे जगत्के साथ साथ दुःखकी भी निवृत्ति होती है। यही आरम्भवादका निःश्रेयस या अपवर्ग है। यह बौद्धोंका शून्य (अभाव पदार्थ) नहीं है। आरम्भवादी लोग सत्कारणवादी हैं उनकी चरमावस्था या अपवर्ग अभाव पदार्थ नहीं, सत्परमाणु मात्र है। "सदकारण-वन्नित्यम्" इस सूत्रके मतसे सत्परमाणु नित्य है। अब आजकल वह आरम्भवाद भी नहीं और उसके अनुरूप व्याख्या भी नहीं है। बौद्धोंने सुना है, कि अपवर्ग या मोक्षमें दुःख नहीं रहता और न्याय तथा वैशेषिककी वैसी ही व्याख्या भी की है। इसके बाद न्याय-वैशेषिक हिन्दूदलके हाथ आया। हिन्दूलोग भी उसकी वही व्याख्या करते आते हैं। गुमनाम सांख्यसूत्रके कर्त्ता भी उन्हींमें एक होंगे।

मोक्षकी बात तो दूर रही, वह सब व्याख्याकारी ज्ञानके यथार्थ भावको भी नहीं जानते। इसीलिये उनके हाथमें पड़नेसे न तो न्याय, वैशेषिक दर्शन, न शून्यवाद, न आरम्भवाद, न परिणामवाद, न अद्वैतवाद और न कोई और वाद है, केवल ढेंकीका धमकन मात्र रह गया है। मैं इसके गूढ़ रहस्यको जानता हूँ, इसीसे मैं दार्शनिकोंके बारेमें इतनी तीव्र कटूक्ति कर सका हूं।

दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति होती ही नहीं।

न्यायके सोलह पदार्थ और वैशेषिकके छः पदार्थोंके अवगत होनेसे अथवा सांख्य सूत्रकारके "यद्वातद्वा" का उच्छेद करनेसे दुःखकी निवृत्ति (अत्यन्त निवृत्ति) हो नहीं सकती। समझ लीजिये, कि आरम्भवादके मतसे पहले कहे उपायोंके अनुसार अपवर्गमें परमाणु मात्र अवशिष्ट रहा, जगत नहीं रहा; तुम्हारा मोक्ष हुआ,

दुःख नहीं रह गया। जब इस परमाणुसे जगत् उत्पन्न हुआ है, तब तुम्हारी अपवर्ग अवस्थामें जो परमाणु रह जायेंगे, वह भी तो नवीन जगत्को उत्पन्न करेंगे; उसीके साथ साथ तुम भी उत्पन्न होगे। तुम्हें आजकलकी तरह फिर दुःख भोगना ही पड़ेगा। न्यायदर्शनके महर्षि गौतम, और वैशेषिक दर्शनके महर्षि कणाद हों या न हों, चाहे इस नामका कोई रहा हो या न रहा हो, मैं सूत्रकर्त्ताओंका कोई मूल्य नहीं समझता; केवल सूत्र द्वारा जहां तक बना, वहां तक मैंने दिखाया है।

ज्ञान कैसे लाभ होता है।

अब यहां गूढ़ बातें कहता हूं। ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है सही; किन्तु ऐसा कोई कह नहीं सकता, कि वह ज्ञान इन सोलह या छः पदार्थोंके जाननेसे होगा। इसीसे मीमांसकगण कहते हैं, कि कितने ही लोगोंको ज्ञान होता दिखाई दिया है, किन्तु यह ज्ञान बतानेका कोई उपाय नहीं, कि किसके जानने अथवा क्या करनेसे ज्ञान होता है। श्वेतकेतुने समस्त वेदाध्ययन कर ज्ञान पाया, राजर्षि जनकने याज्ञवल्क्यके उपदेशसे ही ज्ञान लाभ किया, ऋषि वामदेवने यह सब कुछ नहीं किया, फिर भी उन्होंने माताके पेटमें ही ज्ञान पा लिया।

अतएव यह स्थिर करना पड़ता है, कि किसी कारण द्वारा ज्ञान प्रकट हो नहीं सकता; वह कारण सबका ही एक समान हो नहीं सकता। श्वेतकेतुने पिताके पास सीखते सीखते, राजर्षि जनकने याज्ञवल्क्यकी, बातें सुनते सुनते और वामदेवने माताके गर्भमें रहते रहते ही उस प्रतिबन्धको काट दिया था; ऐसा ही समझना चाहिये।

"ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्" "(वेदान्त सूत्र ५१। ३ य अ०)" "ज्ञानं ऐहिकं इह जन्मनि भवितव्यमपि अप्रस्तुत प्रतिबन्धे, प्रतिबन्धक्षये तत् ज्ञानजन्मदर्शनात्।"

ऐसे ज्ञानीको जगत् संसार या दुःख भोगना पड़ता; यह क्यों? वह लोग देखते हैं, कि मैं अकेला हूं; जगत्, मरुभूमिकी मरीचिका या रस्सीमें सर्पकी तरह मिथ्या है। इस भ्रमको जान लेनेसे फिर यह उदित हो नहीं सकता। उनके लिये अपवर्गके जैसा अभाव पदार्थ नहीं; वह लोग भ्रमके द्रष्टा मूल सत्यवस्तुके जानने वाले होते हैं।

जिस वेदनिष्ठा द्वारा यह मोक्ष लाभ किया जाता है, तार्किकगणने उस वेदको छोड़ स्वाधीन भावसे तथ्य निर्णय करनेमें ही आरम्भ-वादका आविष्कार कर डाला था। अथ वह आरम्भवाद नहीं है। हम लोगोंने न्यायदर्शनके दश आह्निकमें तर्क करनेके जिन सोलह कायदोंको पाया है; उसे अध्यात्मिकताके वाक्यजालसे चुन लेना चाहते हैं। अतएव न्यादर्शनके प्रथम सूत्रके अन्तमें जो "निःश्रेयसाधि गमः" शब्द है, उसे निकालके वहां "तर्कविद्याधि गमः" शब्द वैठा देना चाहिये। अथवा "तत्त्व ज्ञानान्निःश्रेयसाधि गमः" तक निकालके "षोड़शपदार्थाः।" इन कई अक्षरोंके मिलानेसे ही काम चलेगा। द्वितीय सूत्रको विलकुल ही निकाल देना चाहिये।

ब्राह्मणके लिये न्यायको वेदका उपाङ्ग स्वरूप रखनेके लिये इस प्रकार वादके लोगोंके वनाये अन्यान्य विषयोंको निकाल देना चाहिये।

* * *

दर्शन शास्त्रके सम्वन्धमें ऐसी ही गभीर गवेषणापूर्ण व्याख्या करते करते भारती महाशयके एक दिन अकस्मात अत्यन्त बीमार हो जानेकी वजह कुछ दिनके लिये यह काम स्थगित रखना पड़ा। इसके बाद उन्होंने शय्यागत अवस्थामें ही अपने असीम स्नेहभाजन मित्र श्रीमान् राजा शशिशेखरेश्वरसे षड़दर्शन; विशेषतः उसके अन्तर्गत सांख्यदर्शनके सम्वन्धमें जो और भी कुछ बातें कही थीं, उसके बारेमें भारती महाशयके काशीधाममें देहत्याग करनेके उपरान्त उनके कितने ही अनुरक्त भक्त और शिष्योंके राजा वहादुरसे उन सब विषयोंके सुननेका आग्रह प्रकाश करनेपर श्रीमान् राजा वहादुरने उसके वारेमें जो मन्तव्य प्रकाश किया था, नीचे संक्षेपमें

उसे लिपिवद्ध कर दर्शनशास्त्र विषयक इस आलोचनाका उपसंहार किया जाता है—

षड़्दर्शनकी आलोचनाके प्रसङ्गमें स्वर्गीय भारती महाशयसे इसके बाद जो मालूम हो सका है, उसे ज्योंका त्यों फिरसे कहकर आपलोगोंको सन्तुष्ट करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। फिर भी संक्षेपमें इतना कह सकता हूं, कि प्राचीन दर्शनशास्त्रके सिद्धान्तोंके इस समय सम्पूर्ण अविकृत रूपमें मिलनेका कोई उपाय ही नहीं। प्राचीनकालके पुराणोंमें, परवर्त्ती समयके कितने ही बनावटी वाक्य मिश्रित होनेके कारण जैसे पुराण शास्त्रके कितने ही स्थानोंका वर्णन रूपान्तरित हो इस समय हमलोगोंकी आंखोंके आगे समुपस्थित हो रहा है, * वैसे ही दर्शनशास्त्रके सम्बन्धमें भी शोचनीय घटना घटी है। भारती महाशयकी बातोंसे मैं यही समझ सका हूं, कि न्याय और सांख्यदर्शनके सम्बन्धमें वर्त्तमान समय बड़ा ही विभ्राट उपस्थित हुआ है। यह कहना बाहुल्यमात्र है, कि यह विभ्राट दश कोड़ी या एक सौ-दो सौ वर्षोंमें संघटित नहीं हुआ है। यहां वर्त्तमान शब्दका अर्थ अतीत सहस्राधिक वर्ष-व्यापक समय समझना चाहिये। जिस समय भारतव्यापी घोर अराजकता उपस्थित हुई थी; जिस समय हिन्दूशास्त्र ग्रन्थोंकी रक्षाके लिये कोई भी शक्तिशाली हिन्दू राजा इस देशमें वर्त्तमान नहीं थे; उस समयमें साम्प्रदायिक धर्म्ममतके प्रचारकोंने चारो ओर आविर्भूत हो इस देशके प्राचीन दर्शन, पुराण, स्मृति, तन्त्र प्रभृति सब श्रेणीके शास्त्रग्रन्थोंमें ही अपने अपने खयालसे उत्पन्न सिद्धान्तके समर्थक विषयोंको प्रविष्ट करानेकी यथासाध्य चेष्टा की थी। उस अराजकताके समयमें बहुत दिनों तक इस देशमें इसी प्रकार समाजध्वंसकर और शास्त्रध्वंसकर कार्य्य बड़े ही वेगके साथ चलाया गया था। उसीके फलसे किसी किसी ग्रन्थमें लिखित ऋषिवाक्यका आंशिक रूपान्तर और किसी किसीका आमूल

---

* ब्रह्मानन्द भारतीकृत "पुराण-तत्त्व" तृतीय खण्ड देखना चाहिये।

परिवर्त्तन तथा कोई कोई ग्रन्थ समूल उत्पाटित नष्टभ्रष्ट वृक्षकी तरह शोचनीय दशाको प्राप्त हुए हैं। शेषोक्त श्रेणीके नष्टभ्रष्ट शास्त्रग्रन्थोंमें सांख्यदर्शनका नाम भी लिया जा सकता है।

महाभारतके भीष्मपर्व्वकी श्रीमद्भगवद्गीतामें "सांख्ययोग" नामक एक अध्याय है। गीताके इस सांख्ययोग-अध्यायमें जीव और ब्रह्मकी सम्बन्ध-निर्देशक गभीर दार्शनिक तत्त्व-मूलक बातें हैं। सांख्ययोग अध्यायकी इन सब बातोंकी जिस भावसे आलोचना की गई है, और इस समयके "सांख्यसूत्र" नामक ग्रन्थमें जो मिलता है, उससे वह सम्पूर्ण विभिन्न प्रकारका दिखाई देता है। इसलिये अनायास ही ऐसा अनुमान किया जा सकता है, कि पूर्व्वकालका महर्षि कपिल-कृत मूल सांख्यदर्शन और ही प्रकारका था।

श्रीमद्भगवद्गीताके "सांख्ययोग" अध्यायकी टीकाके एक स्थानमें श्रीधर स्वामीने लिखा है;—

"सम्यक् ख्यायते प्रकाश्यते वस्तुतत्त्वमनयेति संख्या सम्यक् ज्ञानम्। तस्यां प्रकाशमानमात्मतत्त्वं सांख्यम्। तस्मिन् करणीया-बुद्धिरेषातवाभिहिता। एवमभिहितायामपि तवचेदात्मतत्त्वमपरोक्षं न भवति तर्ह्यन्तः करणशुद्धिद्वारात्मतत्त्वा परोक्षार्थं कर्मयोगे त्विमां बुद्धिं श्रृणु। यया बुद्ध्या युक्तः परमेश्वरार्पित कर्म्मयोगेण शुद्धान्तः-करणः संस्तत् प्रसादलब्धापरोक्षज्ञानेन कर्म्मात्मकं वन्धं प्रकर्षेण हास्यसि त्यक्ष्यसि।"

श्रीधर स्वामीकी इस उक्तिसे और भी साफ जान पड़ता है, कि आजकलके प्रकाशित सांख्यदर्शनको पढ़कर जो लोग उसका अनीश्वरवादी या नास्तिकदर्शनके नामसे सिद्धान्त किया करते हैं, वह मूल सांख्यदर्शनको गँवाके मिलावटी सांख्यदर्शनको पढ़ एक बहुत बड़ी भूल धारणाका पोषण किया करते हैं। केवल ऐसा नहीं, कि कोई कोई पण्डित सांख्यदर्शनको निरीश्वरवादी या नास्तिक दर्शनके नामसे व्याख्या किया करते हैं, बहुत दिन पहले "सर्व्वदर्शन-संग्रह"

के ग्रन्थकार माधवाचार्य्यके मुखसे भी इसी श्रेणीकी व्याख्या सुनाई दी है। माधवाचार्य्यने निजकृत इस ग्रन्थके एक स्थानमें लिखा है,—

"एतदर्थं निरीश्वरसांख्यशास्त्रप्रवर्त्तककपिलानुसारिणां मत-मुपन्यस्तम् ।"

इस समय बाजारमें मुद्रित जो "सांख्यसूत्र" ग्रन्थ हमलोग देखते हैं, उसके एक सूत्रमें लिखा है,—"अचेतनत्वेऽपिक्षीरवच्चेष्टितंप्रधा-नस्य"। इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए माधवाचार्य्यने कहा है,—तथा च सर्व्वार्थदर्शी परमेश्वरः स्वीकर्त्तव्य स्यादितिचेत् तदसङ्गतम्, अचेतनस्यापि प्रधानस्य प्रयोजनवशेन प्रवृत्त्युपपत्तेः।" इससे हमलोग जान सकते हैं, कि प्रकृति अचेतन है। किन्तु श्रीमद्भगवद्गीताके सांख्ययोग अध्यायमें स्वयं श्रीकृष्ण देवके निजमुखसे निकले वाक्योंसे मालूम होता है, कि प्रकृति चैतन्यस्वरूपा है। श्रीकृष्ण कहते हैं,—प्रकृत्यैवच कर्म्माणि क्रियमाणनिसर्व्वशः।" उद्धृत वाक्यका अर्थ है,—प्रकृति सब काम करती हैं, अर्थात् विश्वके समस्त कामोंकी नियन्ता और मूलकर्त्ता वही हैं। अचेतन वस्तुमें किसी कार्य्यका कर्त्तृत्व रह ही नहीं सकता। इससे साफ मालूम होता है, कि द्वापरके अन्तमें कुरुक्षेत्रमें भारत-युद्धके आरम्भके समय भी सांख्यका सिद्धान्त भारतमें सर्व्वत्र समादृत था और उस समय जो सांख्यदर्शन इस देशमें प्रचलित था, वह निरीश्वरवाद-मूलक नास्तिक दर्शन नहीं था; उस समय प्रकृतिको भी इस देशके सब लोग चैतन्यस्वरूपा परमादेवीके नामसे जानते और मानते थे; इसके बहुत दिन बाद सांख्यदर्शनको निरीश्वरवाद-मूलक नास्तिकदर्शनमें रूपान्तरित किया गया है और इसीके साथ चैतन्यमयी प्रकृतिकी भी अचेतन प्रकृतिके नामसे व्याख्या की गई है।

श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कन्धमें तृतीय अध्यायमें वर्णित हुआ है, कि सृष्टिकी प्रथम अवस्थामें नारायणने मत्स्य, कूर्म्म, नृसिंह, वामन प्रभृत्ति रूपसे विश्वमें अवतीर्ण होनेसे भी बहुत पहले कपिल ऋषिके

रूपसे अवतीर्ण हो तत्त्वज्ञाननिर्णायक सांख्ययोग जीवोंके उपकारके लिये प्रकाश किया था * । छपे हुए सांख्यसूत्र ग्रन्थमें आप्तवाक्य और वेदवाक्यको प्रमाण कहकर स्वीकार किया नहीं गया है, किन्तु सांख्यसूत्रके प्राचीन विवृतिग्रन्थ सांख्यकारिकाके अनेक स्थानमें वेदवाक्य और ऋषिवाक्यको सांख्यसूत्र ग्रन्थमें प्रमाणके नामसे ग्रहण किया गया है † ।

सांख्ययोग या सांख्यदर्शनके नामसे परिचित मत-विशेषके प्रवर्त्तकके नामसे जो कपिलमुनि ज्ञानिसमाजमें सर्व्वत्र सुपरिचित थे,-जो वास्तवमें मानव-समाजके सबसे प्रथम आत्मतत्त्व ज्ञानार्ज्जनके पथप्रदर्शकके नामसे इस देशके प्राचीन इतिहास-पुराणमें वर्णित हुए हैं, जिन महर्षि कपिलको विष्णुका अवतार मान उनकी प्रतिमाकी पूजा करनेके लिये लाख-लाख हिन्दू सन्तान वर्षभरके उपरान्त मकर संक्रान्तिपर गङ्गासागर-सङ्गममें पहुँचा करते हैं; जिन महर्षि कपिलके नामको स्मरणकर नित्य पितृतर्पणके पहले आज भी भारतके सभी स्थानोंके ब्राह्मणगण एक अञ्जलि जल अर्पण किया करते हैं; ऐसे ही महर्षि कपिल घोर नास्तिक थे और उनके प्रवर्त्तित सांख्यदर्शनको निरीश्वरवादसे परिपूर्ण मान जो लोग आजकल भयानक भूल धारणाका हृदयसे पोषण किया करते हैं, वह लोग निश्चय ही नितान्त कृपाके पात्र हैं ।

---

* "पञ्चमः कपिलोनाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् । प्रोवाचासूरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥"

ऊपर उद्धृत श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीने लिखा है,—"कपिलावतारमाह पञ्चम इति । असूरये एतन्नाम्ने ब्राह्मणाय तत्त्वानाम ग्रामस्य संघस्य विनिर्णयो यस्मिन् तत् सांख्यम् ।"

† "दृष्ट मनुमान माप्तवचनञ्च सर्व्वप्रमाणसिद्धत्वात् ।"

"तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्व्वक माप्तश्रुतिराप्त वचनन्तु ।" (सांख्यकारिका)

